ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जनवरी २०१६ Date of Printing = 05-01-16
प्रकाशन दिनांक= 05-01-16

वर्ष ४५ : अङ्क ३
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : पौष-माघ, २०७२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११६

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९९५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- महर्षि दयानन्द और गणतन्त्र २
- वेदोपदेश ३
- महान नेता - स्वामी श्रद्धानन्द ४
- आर्यसमाज और युवा शक्ति ६
- देशभक्तों का.... ८
- गोदुग्ध अमृत है.... १२
- सूर्य पर ही..... १५
- चन्द्रमास पूर्णिमा.... १७
- पण्डित लेखराम... १९
- वैदिक मन्त्रों के.... २२
- इतिहास के पन्नों में..... २६

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण - ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) - ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

महर्षि दयानन्द और गणतन्त्र

(डॉ० शिवकुमार शास्त्री, चलभाष' 09810095061)

विचार-विचक्षण पाठकवृन्द! दादाभाई नौरोजी ने सन् १८६८ में मुम्बई के चौपाटी मैदान में स्वराज्य शब्द दोहराया था। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने १९०६ में कहा था- "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।" ३१ दिसम्बर १९२९ को लाहौर में पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने पूर्ण स्वराज्य की घोषणा की थी। परन्तु इन सबसे पहले जब कि कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था, सन् १८७५ में युगप्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखा-"जो आप चाहे कहें, सत्य यह है कि अपना राज्य सबसे उत्तम है।"

महर्षि दयानन्द ने स्वदेश प्रेम एवं स्वराज्य की भावना जाग्रत करके भारत की जनता को विदेशी शासन से मुक्त होने का पाठ पढ़ाया था। इस देश की प्रशंसा करते हुए स्वामी जी ने कहा था-

"यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है, जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं। जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है और आगे भी होगा उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब जने मिल कर प्रीति से करें।"

महात्मा गान्धी के स्वदेशी आन्दोलन से बहुत पहले महर्षि दयानन्द ने देशवासियों में स्वदेशी भावना भरी थी। शाहपुराधीश को उन्होंने स्वदेशी वस्त्रों तथा वस्तुओं का प्रयोग करने का आदेश दिया था। स्वराज्य के जन्मदाता देव दयानन्द ने जहाँ स्वराज्य की वकालत की, वहाँ सुदृढ़ गणतन्त्र का भी आदेश दिया। महर्षि द्वारा प्रतिपादित राजनीति का आयाम बहुत विस्तृत है। ग्राम से लेकर विश्व तक की शासन व्यवस्था का वह दृढ़ स्तम्भ है। उनके द्वारा निर्दिष्ट व्यवस्था से किसी भी व्यक्ति के निरंकुश बन जाने की सम्भावना नहीं रहती।

"राज्य के लिए एक को राजा कभी नहीं मानना चाहिए, क्योंकि अकेला राजा स्वाधीन व उन्मत्त होके प्रजा का नाशक होता है अर्थात् वह राजा प्रजा को खाए जाता है, इसलिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन नहीं करना चाहिए।"- सत्यार्थ प्रकाश, षष्ठ समुल्लास।

"तीन प्रकार की सभा ही को राजा मानना चाहिए, एक मनुष्य को कभी नहीं। वे तीन सभाएँ हैं- विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा और राजार्यसभा।"- ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका

सर्वतोमुखी क्रान्ति के अग्रदूत महर्षि दयानन्द सरस्वती की स्पष्ट घोषणा है- "एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए। किन्तु, राजा जो सभापति, तदाधीन सभा, सभाधीन राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।"

अकेला राजा ही सब कुछ न हो, इसके लिए तर्क देते हुए वे लिखते हैं- "विशेष सहायक के बिना जो सुगम कर्म है, वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है, जब ऐसा है, तो महान् राज्यकर्म एक से कैसे हो सकता है, इसलिए एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है।"- सत्यार्थ प्रकाश, षष्ठ समुल्लास।

महर्षि दयानन्द का मत है कि राजकार्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों की सभा हो। राजा सभाओं का मात्र एक सदस्य हो। सभा के परामर्श से ही वह राजकार्य सम्पन्न करता है। इन सभाओं का उस पर पूर्ण अंकुश रहता है। ये सभाएँ भी स्वतन्त्र अथवा निरंकुश नहीं हैं, इन पर प्रजा का अंकुश रहता है। इस प्रकार प्रजा पर इन सभाओं का और सभाओं पर प्रजा का अंकुश लगा कर इन सभाओं को भी स्वच्छन्द नहीं होने दिया।

यदि गणतन्त्र दिवस पर गणतन्त्र के महान् उद्घोषक महर्षि दयानन्द सरस्वती के बताए हुए वेदमार्ग का अनुसरण करें, तो आज हमारे देश में जो निरंकुशता और भ्रष्टाचार व्याप्त है, उससे शीघ्र छुटकारा पाया जा सकता है।

❑❑

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश— सूर्य तैंतीस देवताओं में मुख्य देव है।

यह देव=प्रकाशक देव है और समस्त कालचक्र सूर्य के आश्रित रहता है और सब दिशायें भी इससे ही प्रसिद्ध होती हैं। पृथिवीस्थ समुद्र से लेकर मेघ के ऊपर के जलों को भी धारण सूर्य करता है। हम मनुष्यों को भी सूर्यवत् प्रकाशक व दानशील गुणों से सबको सुख देना चाहिए।

आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपः। सविता (सूर्यः) देवता। भुरिक्पङ्क्तिः छन्दः। पञ्चमः स्वरः।।

अथ सूर्यः किं करोतीत्याह।।

अब सूर्य क्या करता है, यह उपदेश किया जाता है।

ओ३म्— अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव ऽ आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्य्याणि ॥ (यजु० ३४। २४)

पदार्थः — (अष्टौ) (वि) (अख्यत्) विख्यापयति (ककुभः) सर्वादिशः। ककुभइति दिङ्नाम ॥ निघं० १।६॥ **(पृथिव्याः)** भूमेः सम्बन्धिनीः (त्री) त्रीणि **(धन्व)** धन्वेंयन्तरिक्षनाम ॥ निघं० १।३॥ **(योजना)** योजनानि **(सप्त, सिन्धून्)** भूमि समुद्रमारभ्य मेघादूर्ध्वाऽवयवपर्यन्तान् सागरान् **(हिरण्याक्षः)** हिरण्यानि=ज्योतींषि अक्षिणीव यस्य सः **(सविता)** सूर्यः **(देवः)** द्योतकः **(आ) (आगात्)** आगच्छति **(दधत्)** दधानः सन् **(रत्ना)** रमणीयानि पृथिवीस्थानि **(दाशुषे)** दानशीलाय जीवाय **(वार्य्याणि)** वर्तुं=स्वीकर्तुं योग्यानि।

सपदार्थान्वयः — हे मनुष्याः! यथा **(हिरण्याक्षः)** हिरण्यानि = ज्योतींषि अक्षीनीव यस्य सः **(देवः)** द्योतकः **(सविता)** सूर्यः **(दाशुषे)** दानशीलाय जीवाय **(वार्य्याणि)** वर्तुं=स्वीकर्तुं योग्यानि **(रत्ना)** रमणीयानि पृथिवीस्थानि **(दधत्)** दधानः सन् **(त्री)** त्रीणि **(धन्व)** **(योजना)** योजनानि **(सप्त, सिन्धून्)** भौमसमुद्रमारभ्य मेघादूर्ध्वाऽवयवपर्यन्तान् सागरान् **(पृथिव्याः)** भूमेः सम्बन्धिनीः **(अष्टौ, ककुभः)** सर्वादिशः **(व्यख्यत्)** विख्यापयति **(आगात्)** आगच्छति च तथैव यूयं भवत।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे—**(हिरण्याक्षः)** नेत्रस्थानीय ज्योतियों वाला **(देवः)** प्रकाशक **(सविता)** सूर्य **(दाशुषे)** दानशील जीव के लिए **(वार्य्याणि)** स्वीकार करने योग्य **(रत्ना)** पृथिवीस्थ रमणीय रत्नों को **(दधत्)** धारण करता हुआ **(त्री)** तीन **(धन्व)** अवकाशरूप **(योजना)** योजन **(सप्त, सिन्धून्)** भूमि के समुद्र से लेकर मेघ के ऊपर के अवयवों तक सागरों **(पृथिव्याः)** पृथिवी सम्बन्धी **(अष्टौ)** आठ **(ककुभः)** दिशाओं को **(व्यख्यत्)** विख्यात करता है और **(आगात्)** आता है, वैसे

तुम भी बनो।।

भावार्थः – हे मनुष्याः। यथा सूर्येण पृथिवीमारभ्य द्वादशक्रोशपर्यन्त गुरुत्त्व-लघुत्व-युतानां सप्त विधानाम् अपामवयवाः सर्वादिशश्च विभज्यन्ते, वर्षादिना सर्वेभ्यः सुखं दीयते, तथा शुभगुण-कर्म-स्वभावैर्दिगन्तां कीर्तिं सम्पाद्य विविधैश्वर्यदानेन मनुष्यादीन् प्राणिनः सततं सुखयत।

भावार्थ–हे मनुष्यो! जैसे सूर्य पृथिवी से लेकर बारह कोश तक गुरुत्व तथा लघुत्व से युक्त सात प्रकार के जलों के अवयवों और सब दिशाओं को विभक्त करता है, वर्षा आदि से सबको सुख देता है, वैसे-शुभ-गुण-कर्म- स्वभाव से दिगन्त कीर्ति प्राप्त करके विविध ऐश्वर्य के दान से मनुष्य आदि प्राणियों को सदा सुखी करो।

भाष्यसार–इस मन्त्र में भौतिक सूर्य के कार्यों का वर्णन किया गया है। इस सूर्य की विविध ज्योतियाँ (किरण) आँखों के तुल्य हैं और यह सूर्य ही दानशील जीवों के लिए वरण करने योग्य पृथिवीस्थ रत्नों को धारण करता है। पृथिवी से लेकर तीन योज्य अर्थात् बारह कोस तक मेघ के ऊपर के अवयवोतक सात सागरों (सात प्रकार के जलों) को विभक्त करता है। पृथिवी से सम्बन्ध सब दिशाओं को विभक्त करता है और वर्षादि से सबको सुख देता है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को योग्य है कि वे सूर्य के तुल्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव से दिगन्त कीर्ति को फैलाकर, विविध ऐश्वर्य के दान से प्राणियों को सदा सुखी किया करें।

(**"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर"** से उद्धृत,
व्याख्याता–स्व० श्री आचार्य सुदर्शनदेव)

महान नेता - स्वामी श्रद्धानन्द

(पं० नन्दलाल निर्भय, भजनोपदेशक, आर्यसदन बहीन जनपद-पलवल, हरियाणा)

जो मानव संसार में, करते अच्छे काम।
कर जाते हैं विश्व में, अपना ऊँचा नाम।।
अपना ऊँचा नाम, धन्य है उनका जीवन।
करते हैं यशगान, प्रेम से उनका सज्जन।।
सुख चाहो यदि मीत, रात-दिन करो भलाई।
पाओगे सम्मान, मार्ग है यह सुखदाई।।

स्वामी श्रद्धानन्द जी, नेता थे गुणवान।
भारत माँ की कर गये, जग में ऊँची शान।।
जग में ऊँची शान, प्रभु के भक्त निराले।

देशभक्त बलवान, बहादुर थे मतवाले।।
ऐसा नेता यहाँ, न अब तक कोई आया।
जिसने निज सर्वस्व, देश की भेंट चढ़ाया।।

जगत गुरु दयानन्द के, वे थे शिष्य महान।
अंग्रेजों से वे लड़े, जाने सकल जहान।।
जाने सकल जहान, गजब के थे संन्यासी।
भूलेंगे ना कभी, सन्त को भारतवासी।।
काँग्रेस अध्यक्ष, बने थे काम किया था।
नेता थ निर्भीक, जगत में नाम किया था।।

पापी ईसाई, यवन, करते थे अन्याय।
भारतीयों पर रात-दिन, जुल्म रहे थे ढाय।।
जुल्म रहे थे ढाय, कुकर्मी अत्याचारी।
आतंकित थे सुनो, भारत के सब नर-नारी।।
अद्भुत शुद्धि चक्र, चलाया था स्वामी ने।
अंग्रेजों का राज्य, हिलाया था स्वामी ने।।

मोहनदास गाँधी अगर, करते नहीं विरोध।
हो जाता संसार को, वेदधर्म का बोध।।
वेदधर्म का बोध, आर्य जग बन जाता।
पापी पाकिस्तान, जगत में नजर न आता।।
वेद विरोधी दुष्ट, नास्तिक कहीं न होते।
राम कृष्ण के पुत्र-पुत्रियाँ सुख से सोते।।

भारत के नेता अगर, वेद धर्म लें जान।
स्वामी श्रद्धानन्द की, शिक्षाएँ लें मान।।
शिक्षाएँ ले मान, सत्य पथ को अपनाएँ।
वीर बहादुर बनें, राष्ट्र की शान बढ़ाएँ।।
भारत जग का गुरु, पुनः फिर बन जाएगा।
भारत का यशगान, जगत सारा गाएगा।।

आर्यसमाज और युवाशक्ति

(धर्मपाल आर्य)

आर्य समाज का युवा पीढ़ी से बहुत गहरा सम्बन्ध है। आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में युवाओं का योगदान और युवाओं के नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक निर्माण में आर्य समाज की अहं भूमिका रही है। राष्ट्र की, समाज की और परिवार की आवश्यकता युवा है और युवा की आवश्यकता आर्य समाज है। राष्ट्र का निर्माण युवाओं से होता है, तो युवाओं का निर्माण आर्य समाज से होता है। यदि राष्ट्र की तकदीर युवा है, तो युवा की तकदीर आर्य समाज है। यदि युवा राष्ट्र का कर्णधार है, तो आर्य समाज युवा का कर्णधार है। यदि युवा राष्ट्र का प्राण है, तो आर्य समाज युवा का प्राण है। देश की युवा पीढ़ी में और आर्य समाज में पिता-पुत्र का सम्बन्ध है। राष्ट्र की समस्या युवाओं की समस्या और युवाओं की समस्या ही आर्य समाज की समस्या है। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। मैं यहाँ यह भी कहना चाहूँगा कि आर्य समाज की भुजा यदि कोई है, तो वह युवा शक्ति है। युवा इस देश की शारीरिक शक्ति है, युवा इस देश की आत्मिक और सामाजिक शक्ति है, तभी तो महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज के दस नियमों में एक नियम ये भी बनाया- "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।" तीन प्रकार की उन्नतियों की ओर महर्षि जी ने हम सबका ध्यान खींचा है, वे हैं पहली- शारीरिक उन्नति, दूसरी- आत्मिक उन्नति तथा तीसरी- सामाजिक उन्नति। "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" अर्थात् धर्म-सिद्धि का सबसे पहला साधन है शरीर अर्थात् स्वस्थ, नीरोग और बलयुक्त शरीर धर्म प्राप्ति का और बलयुक्त युवा राष्ट्र की प्रथम आवश्यकता है क्योंकि शारीरिक शक्ति सम्पन्न युवा ही राष्ट्र को शक्तिसम्पन्न राष्ट्र बना सकते हैं। दूसरा आत्मिक उन्नति करना! आत्मिक उन्नति से अभिप्राय उस उन्नति से है, जिसमें आत्मा की उन्नति होती हो। आत्मिक उन्नति कब होगी इस प्रश्न के उत्तर पर विचार करने से पूर्व आत्मिक उन्नति है क्या? इस प्रश्न पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। आत्मा के विषय में जानना, आत्मा को पहचानना, आत्मा का अनुभव करना। आत्मा से सम्बन्धित समस्त संशयों का समाधान हो जाना यदि मैं उपनिषद् की भाषा में कहूँ तो "आत्मवित् हो जाना ही आत्मोन्नति है। उपनिषद् में आता है कि आत्मवित् तरतिशोकम्" अर्थात् जो आत्मवित् (आत्मा को जानने वाला) है, वह समस्त शोकों से पार हो जाता है। जिस समाज के, जिस राष्ट्र के युवा शारीरिक शक्ति और आत्मिक शक्ति (आत्मिक ज्ञान) से ओत-प्रोत होंगे वह समाज, वह राष्ट्र समस्त शोकों से पार हो जायेगा। शारीरिकोन्नति और आत्मिकोन्नति के बाद तीसरी उन्नति (सामाजिक) पर विचार करें, उससे पूर्व यह विचार करना आवश्यक है कि आत्मिक उन्नति आखिर कैसे हो? आत्मा से सम्बन्धित ज्ञान, जब युवाओं को दिया जायेगा तो युवा शक्ति आत्मिक उन्नति करेगी। याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से कहते हैं कि हे मैत्रेयी! आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः, मन्तव्यः, निदिध्यासितव्यः। अर्थात् हे मैत्रेयि आत्मा को ही देखना चाहिए, सुनना चाहिए, मनन करना चाहिए और विशेष ध्यान करना चाहए। आज हमारी शिक्षा प्रणाली पाश्चात्य जीवन शैली से प्रभावित है। आध्यात्मिक शिक्षा को छोड़कर हमारी शिक्षा में जीविकोपार्जन की प्रधानता है। मैं जीविकोपार्जन की शिक्षा का विरोधी नहीं हूँ लेकिन जीविकोपार्जन के साथ-साथ हमारी शिक्षा प्रणाली आध्यात्मिकता से भी जुड़ी हो, ताकि साँसारिक जीवन के साथ-साथ इस युवा पीढ़ी का आध्यात्मिक जीवन भी

समृद्ध बन सके। तीसरी उन्नति (शक्ति) है, सामाजिक उन्नति। हमारी युवा-पीढ़ी सामाजिक उन्नति से ओत-प्रोत हो; सामाजिक उन्नति को ही मैं सामाजिक शक्ति समझता हूँ, सामाजिक समरसता, सामाजिक सौहार्द, सामाजिक सहयोग, सामाजिक दायित्व तथा सामाजिक सिद्धान्त आदि को सामाजिक उन्नति का सोपान कहा जा सकता है। हमारी युवापीढ़ी यदि सामाजिक समरसता से , सामाजिक सौहार्द, सामाजिक सहयोग, सामाजिक दायित्व तथा सामाजिक सिद्धान्तों से सम्पन्न हो जाये, ओत-प्रोत हो जाये, तो हमारे युवा शक्ति सामाजिक उन्नति वाली कही जा सकती है। सामाजिक शक्तिसम्पन्न हमारी युवापीढ़ी कब हो सकती है? इसका उत्तर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी देते हुए लिखते है- "सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए"। जब हम युवापीढ़ी को सामाजिक-सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहने में सक्षम बना पायेंगे, समर्थ और सफल बना पायेंगे तो समझना चाहिए कि हमने अपनी युवाशक्ति को सामाजिक शक्ति का पाठ पढ़ा दिया है अथवा समााजिक शक्ति प्राप्त करने की राह पर चला दिया है। उपरोक्त तीनों उन्नतियों से ओत-प्रोत युवा जो सैनिक होगा या सेनापति होगा, उपरोक्त तीनों उन्नतियों (शक्तियों) से ओत-प्रोत युवा जब गृहस्थी होगा, ब्रह्मचारी होगा, आचार्य होगा, पिता होगा, पुत्र होगा, पुत्री होगी, भाई होगा, बहिन होगी, प्रचारक होंगे, उपदेशक होंगे तथा शिक्षक होंगे, तो उस परिवार की, समाज की, राष्ट्र की और हमारे विद्या के मन्दिरों की कितनी सुखद और सफल स्थिति होगी इसकी कल्पना पाठक स्वयं कर सकते हैं। हम युवा पीढ़ी को राष्ट्र की तकदीर कहते हैं, हम युवा पीढ़ी को राष्ट्र की सम्पत्ति कहते हैं, हम युवा पीढ़ी को राष्ट्र का भविष्य कहते हैं, हम युवा पीढ़ी को राष्ट्र का गौरव कहते है, हम युवा पीढ़ी को राष्ट्र की पहचान कहते हैं, हम युवा पीढ़ी को राष्ट्र की भुजा कहते हैं, हम युवा पीढ़ी को राष्ट्र का नायक कहते हैं और युवा पीढ़ी को राष्ट्र का प्राण कहते हैं। राष्ट्र की तकदीर, राष्ट्र की सम्पत्ति, राष्ट्र की पहचान, राष्ट्र का गौरव, राष्ट्र की भुजा, राष्ट्र का नायक और राष्ट्र का प्राण यदि सशक्त नहीं होगा, यदि सक्षम नहीं होगा यदि सबल नहीं होगा तो राष्ट्र कैसे समृद्ध बनेगा, कैसे सशक्त और सफल व सबल कैसे बनेगा? आज हमारी युवा पीढ़ी पर आधुनिकता व पाश्चात्य सभ्यता को जो रंग चढ़ा है, उससे हमारी सांस्कृतिक मान्यताएँ हाशिए पर चली जा रही है। आज अनेक मानवता विरोधी ताकतें हैं, जो युवा पीढ़ी को भटकाने का, हिंसा के रास्ते पर चलाने का कार्य कर रही हैं, जिनके कारण पूरी दुनिया भय और आतंक के साये में साँस ले रही है। अर्थ प्रधान युग में युवा पीढ़ी का संस्कारों से विहीन होना अनेक आपदाओं का दस्तक देना है। रोजाना भिन्न-भिन्न विषय हमारे लिए बहस का विषय बनते हैं लेकिन युवा संस्कार विहीन क्यों होते जा रहे हैं, उन्हें संस्कारवान्, चरित्रवान्, सदाचारी, शिष्टाचारी कैसे बनाया जाये इस पर खुले मस्तिष्क से बहस की आवश्यकता है। युवा राष्ट्र की अनमोल धरोहर है इसकी रक्षा करना राष्ट्र की रक्षा करना है। आर्य समाज हमेशा ही युवाओं का प्रेरणा स्रोत रहा है। इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अनेक लेखक, अनेक कवि, अनेक साहित्यकार, अनेक पत्रकार, अनेक नेता और असंख्य क्रान्तिकारी आर्य समाज को अपने जीवन में प्रेरणास्रोत मानते रहे हैं। आज भी आर्य समाज ही युवा-शक्ति का पथ-प्रदर्शक बन सकता है। अन्त में मैं इस कामना के साथ लेख को समापन की ओर ले जाना चाहूँगा कि मेरे देश का युवा अपने जीवन में कुसंस्कारों से बचते हुए, सुसंस्कारों को जीवन में सञ्चित करते हुए भारतमाता का सच्चा सपूत बने। शारीरिक शक्ति, आत्मिक शक्ति और सामाजिक शक्ति से स्वयं ओत-प्रोत होकर अपने राष्ट्र को भी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक शक्ति से ओत-प्रोत करे, तभी "बलमासि बलं मयि धेहि" वेदोक्ति का भाव सार्थक होगा।

❑❑

देशभक्तों का विचित्र लेखन

(राजेशार्य आट्टा)

प्रिय पाठकवृन्द्! १९वीं शताब्दी में महर्षि दयानन्द ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने अंग्रेजों से प्रभावित हुए विना ही और भारत की प्राचीनता से जुड़े रहकर यह घोषणा की कि धार्मिक क्षेत्र में पुराणों का असम्भव व अश्लील लेखन मान्य नहीं है। भले ही उनके रचयिता के रूप में महर्षि वेदव्यास का नाम जुड़ा हुआ हो। मनुस्मृति को पदे-पदे प्रमाण मानकर भी उसके प्रक्षिप्त श्लोकों को त्याज्य बताना उनकी उदारता का प्रतीक है। केवल मनुस्मृति ही नहीं दर्शन, उपनिषद्, ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी वेद-विरुद्ध मान्यता को त्याज्य कहा है अर्थात् किसी भी ग्रन्थ का अध्ययन करते समय अपनी बुद्धि को खुला रखने का आदेश दिया है। इसीलिए पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने लिखा है- "ऋषि दयानन्द ने जिसके हृदय को खोल दिया, उसके हृदय में कोई अन्य दोष भले ही रह जाये, पर अन्धश्रद्धा नहीं रह सकती।"

उस महान ऋषि से हमें वह दृष्टि मिली है कि हम किसी भी पुस्तक की बात को केवल इसीलिए न मानें कि उसकी रचना बहुत बड़े ऋषि, भक्त, पीर, फकीर, कवि, दार्शनिक या देशभक्त साहित्यकार ने की है। क्योंकि उसमें छल भी हो सकता है। पिछले लेख में हमने यह देखा कि भारत की आम जनता की दृष्टि में महान देशभक्त माने जाने वाले नेहरू जी ने कैसा लेखन किया है। प्रस्तुत लेख में कुछ और आदरणीय देशभक्तों के विचित्र लेखन पर दृष्टिपात करते हैं।

अपनी अल्पबुद्धि से मैं आज तक यह नहीं समझ पाया कि 'उत्तररामचरितम्' नाटक लिखकर महाकवि भवभूति ने समाज का कौन सा हित किया। कवि ने अपनी प्रतिभा दिखा दी और कुछ रसिक लोगों का मनोरंजन कर दिया। समाज में शम्बूक वध जैसी मिथ्या धारणाओं का प्रचार हो गया। क्या कोई विद्वान् बता सकता है कि उसके चतुर्थ अंक में महर्षि वशिष्ठ को गोमांस भक्षण करने वाला व महर्षि वाल्मीकि को गोहत्यारा लिखकर कवि ने कौन सा आदर्श स्थापित किया है? भवभूति को महाकवि मानने वाले मांसाहारियों को मांसाहार की खुली छूट मिल गई। पिछली शताब्दी में हुआ स्वामी विवेकानन्द जैसा हिन्दू धर्म का विश्व प्रचारक संन्यासी घर-बार छोड़ कर भी मांसाहार नहीं छोड़ पाया और दूसरों के द्वारा टोकने पर बोला- "इसी भारत में कभी ऐस समय था, जब कोई ब्राह्मण, बिना मांस खाये ब्राह्मण न रह जाता था, तुम वेद पढ़ो, देखोगे, जब संन्यासी या राजा मकान में आता था, तब किस तरह और कैसे बकरों और बैलों के सिर धड़ से जुदा होते थे।" (स्वामी विवेकानन्द जी से वार्तालाप पृ० ४८)

फिर उसी संन्यासी को आदर्श मानने वाले भारत में महात्मा गाँधी के प्रिय शिष्य संत विनोबा भावे ने अपनी पुस्तक 'गीता प्रवचन' में लिख दिया कि महर्षि वशिष्ठ के स्वागत में महर्षि वाल्मीकि ने मधुपर्क में गोमांस खिलाया था। हमारे देश की अधिकतर जनता तो पुस्तकों की पूजा करना ही जानती है, पर भक्त रामशरणदास ने 'गीता प्रवचन' में यह प्रसंग पढ़कर इस अंश को पुस्तक से निकलवाने के लिए विनोबा जी को अनेक पत्र लिखे। लेकिन उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। अन्त में वे स्वयं ही उनसे मिलने जा पहुँचे और बोले- "मधुपर्क में गोमांस की बात अप्रामाणिक है। इसे पुस्तक में से निकाल दीजिए।" विनोबा जी बोले- "हमने यह

बात भवभूति के उत्तर रामचरित के आधार पर लिखी है।''

भक्त जी ने कहा- ''उत्तर रामचरितम् नाटक है, कोई धर्म शास्त्र नहीं, और नाटक प्रमाण नहीं होता।' विनोबा जी बोले- ''मान लीजिए कि सन्तरे की एक फांक खराब है, तो उसे छोड़कर आप शेष सन्तरा तो खा सकते हैं।'' भक्त जी ने कहा- ''लेकिन जब बाजार में अच्छे सन्तरे हों तो सड़ा हुआ सन्तरा ही लेने की क्या जरूरत है?'' विनोबा जी अवाक् देखते रहे। जब ऐसे जागरूक पाठक व श्रोता होंगे, तभी संन्यासी, संत-महन्तों की मनमानी रुकेगी।

शिववर्मा, भगवानदास माहौर, मन्मथनाथ गुप्त, सदाशिव मलकापुकर आदि जीवित शहीदों की भाँति यशपाल ने भी आजाद, भगतसिंह आदि के विषय में अपने संस्मरण लिखे हैं। बाद वाली पीढ़ी भूल गई कि 'दादा कामरेड' 'पार्टी कामरेड' जैसे उपन्यास लिखने वाला यशपाल कभी चन्द्रशेखर आजाद की क्रांतिकारी पार्टी का सदस्य रहा था, जिसने 'सिंहावलोकन' जैसा ग्रन्थ लिखा है। उसी ग्रन्थ में वे क्रांतिकारियों को कम्यूनिस्ट रंग में प्रस्तुत करते हुए लखते हैं- ''नौजवान भारत सभा की ओर से सहभोजों के भी आयोजन किए जाते थे। छुआछूत और साम्प्रदायिकता को समाप्त करने का यह एक अच्छा प्रयास था। उस समय के सहभोजों में ठाठ का भोजन नहीं होता था।.... इन सहभोजों को और भी पैना बनाने के लिए तथा रूढ़ियों पर प्रहार करने के लिए एक ऐसा ओयाजन भी किया गया कि झटके का गोश्त और हलाल का गोश्त एक ही देग में पकाया गया और मुसलमान, हिन्दू, सिख नौजवान मिलकर भोजन करते रहे।..."

प्रबुद्ध पाठक! इन पंक्तियों को पुनः पढ़कर अन्तर्विरोध को देखिये। परस्पर प्रेम तो सादे सहभोज से भी हो सकता था, फिर मांसाहार के आयोजन की क्या आवश्यकता हुई? श्री हंसराज रहबर ने लिखा है- "यह दूसरी बात यशपाल के दिमाग की उपज है और यह बात जनता को आन्दोलन से जोड़ती नहीं, तोड़ती है।" (भगतसिंह : एक ज्वलन्त इतिहास, पृ० ६६)

प्रारम्भ के कुछ वर्ष गुरुकुल कांगड़ी में पढ़ने पर भी यशपाल बाद में कम्यूनिष्ट विचारधारा से प्रभावित हो गये। चन्द्रशेखर आजाद की पार्टी का सदस्य रहते हुए प्रकाशवती नामक लड़की से प्रेम किया और उस लड़की (जो अपनी सगाई के दिन पिता के विरुद्ध घर छोड़कर क्रांतिकारी पार्टी के दफ्तर में आ गई) को आजाद से पूछे बिना ही सदस्य बना लिया। आजाद ने प्रकाशवती से यशपाल के साथ उसके रिश्ते के बारे में पूछा तो वह बोली- "जो होना चाहिए। और आपको इससे क्या मतलब?"

आजाद ने क्रोधित होकर पार्टी का नियम भंग करने के कारण यशपाल को गोली मारने का आदेश दे दिया। काकोरी काण्ड में गिरफ्तार हुए और रहस्यजनक कारणों से छूटे वीरभद्र तिवारी ने यह समाचार (जो पार्टी के कुछ सदस्यों तक ही सीमित था) यशपाल को दे दिया। यशपाल सावधान हो गया।

सभी क्रांतिकारी साथियों का वर्णन सिद्ध करता है कि वीरभद्र तिवारी ने आजाद के अल्फ्रेड पार्क (इलाहाबाद) में होने की सूचना पुलिस को दी थी, जिसके कारण आजाद का बलिदान हुआ। पर यशपाल ने वीरभद्र तिवारी के अहसान को बदला चुकाते हुए 'सिंहावलोकन' में लिखा कि आजाद के प्रति दल के किसी साथी ने विश्वासघात नहीं किया। जबकि अवकाश प्राप्त सी०आइ०डी० अधिकारी श्री धर्मेन्द्र गौड ने "आजाद के गद्दार साथी' में लिखा है– ''सेनापति आजाद मारे गए यशपाल और वीरभद्र की गद्दारी के कारण। दोनों ही ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के मुखबिर थे।"

'क्रान्तिकारी आन्दोलन : 'कुछ अधखुले पन्ने' में यशपाल की गद्दारी को प्रमाणित करते हुए उन्होंने सी०आई०डी० स्पेशल ब्रांच, लखनऊ के दो अत्यन्त गोपनीय दस्तावेजों (दिनांक ७ सितम्बर १६४१ तथा १० मार्च १६४७) की फोटोस्टेट प्रति भी पुस्तक में दी है। दूसरे दस्तावेज में यशपाल का परिचय देते हुए लिखा हुआ है (हिन्दी रूपान्तर)- "१६३०-३१ में समय-समय पर विभाग को अमूल्य सूचनाएं दीं। कारागार १६३२-३८। १६४१ में फिर मुखबिर बनकर बहुत से...। राजभक्त और वफादार मित्र हैं।"

यह बात 'सिंहावलोकन' में गोलमाल ढंग से वर्णित उन (यशपाल) की गिरफ्तारी के तरीके और जेल में ही प्रकाशवती से विवाह करने से और भी स्पष्ट हो जाती है। फिर भी काकौरी काण्ड के अभियुक्त मन्मथनाथ गुप्त यशपाल को पूरे विश्वास के साथ उद्धृत करना जारी रखते हैं। शायद कामरेड साथी होने के कारण ही। 'सरिता' जैसी पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिन्दुत्व पर तो प्रहार किये ही, आर्य समाज के प्रति भी नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। 'क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास' में उन्होंने लिखा है-

"पुनरुज्जीवनवाद का यह (आर्यसमाज) विशुद्ध रूप था, पर उतना विशुद्ध नहीं था, जितना कि प्रथम दृष्टि में ज्ञात होता है, क्योंकि स्वामी जी ने वेदों की नई व्याख्या की और इस प्रकार इस नई व्याख्या की साँस से कुछ नये विचार घुस आये।"

"पंडित (गेंदालाल दीक्षित) जी आर्यसमाजी थे। उन दिनों का आर्यसमाज आज (१६३६ ई०) के आर्यसमाज से भिन्न था, उसमें जीवन का स्फुरण था, तथा कुछ अंश तक वह एक क्रान्तिकारी शक्ति था।"

"पं. रामप्रसाद ने लड़कपन से ही आर्यसमाजी शिक्षा पाई थी, बाद को भी वे कट्टर तो नहीं किन्तु आर्यसमाजी बने रहे।"

इतिहास के पाठक जानते हैं कि ऊपर के इन प्रसंगों में गुप्त जी साम्यवादी चश्मे के कारण निष्पक्ष व विशुद्ध नहीं रह पाए और स्वामी श्रद्धानन्द के बड़े बेटे हरिश्चन्द्र विद्यालंकार के विषय में तो हद ही कर दी। देखिये- "यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि अंग्रेज बहुत गुप्तचर रखते थे, इन गुप्तचरों में एक विशेष गुप्तचर महेन्द्र प्रताप का निजी मंत्री हरिश्चन्द्र था, जिसने बर्लिन समिति को तरह-तरह का धोखा देकर बहुत रुपये लिये थे, यह महाशय स्व० श्रद्धानन्द के कोई थे ऐसा डॉ० दत्त ने लिखा है।" (सातवां संस्करण पृ० १३२)

'भा० स्वा० संग्राम में आर्यसमाज का योगदान' पुस्तक में आचार्य श्री सत्यप्रिय शास्त्री जी ने पुष्ट प्रमाणों के आधार पर गुप्त जी के इस लेखन को निराधार, निष्प्रमाण तथा बुद्धि व तर्क के विपरीत सिद्ध किया है। अब आप सोचिये, प्रसिद्ध देशभक्त भी जब कम्यूनिज्म का चश्मा पहन लेता है, तो उसे क्या-क्या दीखता है और वह क्या-क्या लिखता है!

जब तक देश सर्वप्रथम व सर्वोपरि होता है, तब तक उसकी संस्कृति व महापुरुषों का सम्मान करने में मजहबी मान्यताएँ बाधक नहीं बनतीं। जब किसी ने मजहबी संकीर्णता का चश्मा पहना, तभी देश पराया हो गया। मात्र दो पीढ़ी पूर्व मोहम्मद अली जिन्ना की तरह जिसके पूर्वज हिन्दू (कश्मीरी ब्राह्मण) थे: जिसने 'नया शिवाला', 'राम को इमामे हिन्द' 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' जैसी प्यारी कविताएँ लिखी हों; जिसके 'मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना' जैसे नारे की आड़ में मजहबों को मनमानी की छूट दी जाती हो, उसी अल्लामा इकबाल को जब अंग्रेजों ने 'सर' की उपाधि दी, तो उसने राष्ट्र-प्रेम को छोड़कर मजहबी

संकीर्णता का चश्मा पहन लिया। फिर उसका स्वर बदल गया-

चीनो अरब हमारा हिन्दोस्ताँ हमारा।

मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहाँ हमारा।।

अब उसने औरंगजेब के गीत गाने शुरू कर दिये। भारत में मुस्लिम भारत बनाने का प्रचार शुरू कर दिया। उसके द्वारा १९३० ई० से आरम्भ हुआ मुस्लिम पृथकतावाद का विषैला विचार-वृक्ष अपनी मृत्यु (१२ अप्रैल १९३८ ई०) तक खुले रूप में पुष्ट किया। १९३७ ई० में प्रान्तीय विधानसभाओं के चुनाव परिणामों से निराश हुए जिन्ना को इकबाल ने अपने पत्राचार द्वारा मुस्लिम मजहबी उन्माद को उभारने और उग्र राजनैतिक कार्यक्रम अपनाने की प्रेरणा दी थी। तलवार के जोर पर हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करने की प्रेरणा देने वाला 'सर' इकबाल धर्मनिरपेक्ष भारत में सर आँखों पर रखा जाता है और अखण्ड भारत का साधक वीर सावरकर सा बलिदानी अपने जीवन काल में व मृत्यु के ५० वर्ष बाद भी साम्प्रदायिक कहकर ठुकराया जाता है, तो लगता है कि देश के कर्णधारों द्वारा जाने-अनजाने में राष्ट्रभक्त की परिभाषा निर्धारण में कहीं चूक हुई है, जिसका निराकरण होना चाहिए।

स्वतंत्रता संग्राम के काल में नेताजी सुभाष के विरुद्ध तलवार उठाने की घोषणा करने वाले व स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बनने वाले नेहरू जी ने अपने पूरे जीवन काल में व बाद में भी (१९४८-१९६८ ई०) नेताजी के परिवार की जासूसी करवाई पर उन्हीं के निकट सहयोगी रहे जनरल शाहनवाज खान को पाकिस्तान से बुलाकर अपने मंत्रीमण्डल में स्थान दिया। इसे नेहरू जी की उदारता कहें या दोहरा चरित्र! सम्भवतः उस समय तक देश की आम जनता के सामने यह रहस्य उद्घाटन नहीं हुआ था कि आजाद हिन्द सेना में रहते हुए भी शाहनवाज खान ब्रिटिश सेना में तैनात अपने भाई के सम्पर्क में रहे और विरोधी चाल चलते रहे। कहते हैं कि जब नेताजी को इसका पता चला तो, उन्होंने उन्हें तुरन्त रंगून में मुख्यालय में बुला लिया और कोर्ट मार्शल का भी आदेश दे दिया। बाद में कुछ कारणों से शाहनवाज का कोर्ट मार्शल नहीं हो पाया। मगर नेताजी ने उन्हें अपने पास भी फटकने नहीं दिया। सिंगापुर के अंतिम दिनों में नेताजी के साथ रहने वाले जिन सहयोगियों के नाम आते हैं, उनमें शाहनवाज का नाम नहीं है। (गाँधी, नेहरू और सुभाष पृ० २६-२७- स्वामी शिवानन्द सरस्वती)

शाहनवाज ने गद्दारी की बात अपने लाल किले (५ नवम्बर १९४५ से ३१ दिसम्बर १९४५ तक चले मुकदमे) में दिए गए बयान में स्वीकार की है- "मैं और कर्नल रहमान पहले ब्रिटिश सेना में थे और हम दोनों दोस्त हैं। हमने ब्रिटिशताज-तख्त की वफादारी की कसम खाई थी। इसीलिए मैंने पहले यह कोशिश की कि आजाद हिन्द फौज में कोई भर्ती न हो। जो मेरे पास भर्ती को आता था, उसे मैं मना कर देता था।"

"मैं हमेशा ब्रिटिश ताज का वफादार था। जब मैंने महसूस किया कि हम अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में असफल रहे अर्थात् आजाद हिन्द फौज के बाहर रहकर उसमें तोड़-फोड़ करना संभव नहीं है, तो मैंने अपने वफादार साथियों के साथ आजाद हिन्द फौज में शामिल होने का निश्चय किया। जिससे हम आजाद हिन्द फौज में उस समय तोड़-फोड़ करेंगे, जब आजाद हिन्द फौज जापानियों के दबाव में आकर घुटन महसूस करेगी।" जनरल शाहनवाज खान के इस बयान की पुष्टि के लिए पाठक अंग्रेजी पुस्तक- रेड फोर्ट ट्रायल के पृ० १०३-१०५ देख सकते हैं। (सुभाषवाद-विवेकवाद पृ० २४)

शेष पृष्ठ २१ पर

गोदुग्ध अमृत है।
(आचार्य ब्र0 नन्दकिशोर)

अक्टूबर-15 का शेष

कश्यप संहिता नाम के आयुर्वेद के ग्रन्थ में पृष्ठ ३२७ पर गोदुग्ध की प्रशंसा में लिखा है-

गर्भाधानकरं क्षीरं बन्ध्यानामपि योषिताम्।
क्षीणानां च कृशानां च शोकिनां राजयक्ष्मणाम्।।
तृणगुल्मौषधीनां च अग्राग्रं पथ एव हि।
खादन्ति मधुरप्रायं लवणं च विशेषतः।
तत्सारगुणवैशिष्ट्याद् गवां क्षीरं प्रशस्यते।।

अर्थात् गो दूध के सेवन करने से बांझ औरतों को भी गर्भ रह जाता है। तपेदिक से कृशकाय और पौरुषहीन व्यक्तियों में भी शक्ति का संचार होता है। गाय जंगल में जाकर तिनके और औषधियों का अग्र भाग खाती हैं जो दूध का ही दूसरा रूप है। मीठी और क्षारयुक्त सब ही वस्तुओं को गाय विशेषकर खाती है और उनका सार दूध में खिंचकर आता है। इसी कारण से गाय के दूध की प्रशंसा की जाती है। भावप्रकाश में लिखा है-

वृष्यं ब्रंहणमग्निदीपनकरं पूवह्निकाले पयो,
मध्याह्ने तु बलकरं कफहरं पित्तापहं दीपनम्।
वाल्ये वृद्धिकरं क्षयेऽक्षयकरं वृद्धेषु रेतोवहं,
रात्रौ पथ्यनेकरोगशमनं क्षीरं सदा सेव्यते।।

दूध दोपहर के पहले वीर्यवर्धक और अग्निदीपक तो दोपहर को बलकारक कफ का नाश करने वाला, पित्त को हरने वाला और मन्दाग्नि को नष्ट करने वाला है। बाल्यावस्था में वृद्धि करने वाला और बुढ़ापे में शक्तिह्रास को रोकने वाला और वीर्यवर्धक और रात्रि में सेवन करने से अनेक दोषों को हटाता है इसलिए दूध सदा सेवन करना चाहिए।

आयुर्वेद के एक और महान ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में गाय के दूध और दही के बारे में लिखा है'

गोक्षीरमनभिष्यन्दि स्निग्धं गुरु रसायनम्
रजतपित्तहरं शीतंमधुरं रसपाकयोः।
जीवनीयं तथा वातपित्तघ्नं परमं स्मृतम्।।

गाय का दूध दस्त को बाँधने वाला, चिकना, औषध-गुण सम्पन्न, रक्तपित्त और वातपित्त का नाश करने वाला, शीतल, स्वादु, परिणा में मधुर और जीवन बढ़ाने वाला होता है।

राजनिघण्टु में नरहरि ने गोदुग्ध के गुण इस प्रकार लिखे हैं-

गव्यं क्षीरं पथ्यमत्यन्तरुच्यं स्वादु स्निग्धं वातपित्तमयघ्नम्।
कान्ति प्रज्ञा बुद्धि मेधाङ्गपुष्टि धर्त्तस्पष्टं वीर्य वृद्धिं विधत्ते।।

अर्थ :- स्वादु (मधुर), स्निग्ध, पित्त, वातरोग नाशक, कान्ति (तेज), प्रज्ञा, बुद्धि और मेधा को बढ़ाता, इन सबको तथा शरीर के सब अङ्गों को पुष्ट करता है, यह स्पष्ट व सबको प्रत्यक्ष है कि यह वीर्य-वृद्धि भली भाँति करता है।

भावप्रकाश निघण्टु में लिखा है-

दोषधातु मल स्रोतः किञ्चित्क्लेशकरं गुरु।
जरा समस्त रोगाणां शान्ति कृत्सेविनां सदा।।

गाय का दूध रसरक्तादि सात धातुओं, वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों, मल, मूत्र आदि तथा स्रोत अर्थात् नस नाड़ियों को किञ्चित् क्लेदकारक अर्थात् कुछ गीला करने वाला, अर्थात् इन सबको स्नेहयुक्त रखता है। जो सदैव इसका सेवन करते हैं, उनके पास बुढ़ापा नहीं भटकता। गोदुग्ध का सेवन सब रोगों को शान्त करने वाला है।

अमृतं वै गवां क्षीरमित्याह त्रिदशाधिपः।
महाभारत अनु० अ० ६६ श्लो० ४६

'गौओं का दूध ही अमृत है, यह देवराज इन्द्र ने

कहा है। आयुर्वेद के ग्रन्थ राजनिघण्टु में पीयूष और अमृत दोनों नाम गोदुग्ध के लिखे हैं....

"क्षीरं पीयुषमूधस्यं दुग्धं स्तन्यं पयोऽमृतम्।"

अर्थः- क्षीर, पीयूष, ऊधस्य, दुग्ध स्तन्य, पय और अमृत ये सात नाम राजनिघण्टु में दुग्ध के लिखे गये हैं। क्षरित होकर प्राप्त होता है इसलिये इसे क्षीर कहते हैं बछड़े और अपने स्वामी के प्रेम के कारण गौ माता का दूध ऊध (ओड़ा) में भर जाता है, ऊध में रहने के कारण से ही ऊधस्य इसका नाम पड़ा है। दोह कर निकाला जाता है- इसलिये दुग्ध कहते हैं। स्तनों के द्वारा प्राप्त होता है तथा जिन माताओं के स्तनों में दूध नहीं रहता उनके स्तनों में गोदुग्ध के सेवन से दूध बढ़ता है, अतः इसका नाम स्तन्य हैं पीया जाता है तथा शरीर को बढ़ाता हैः अतः पय कहे हैं। गो दुग्ध के सेवन से मनुष्य की आयु बढ़ती है- वह मृत्यु को भी परे धकेल देता है और अमर कर देता है- इसलिये दूध को पीयूष और अमृत कहा जाता है।

गौदुग्ध के दश गुण

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्ण पिच्छिलम्
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दश गुणं पयः।।

चरक सूत्र स्थान अ० २७ श्लोक २१४

गाय का दूध १. स्वादु (मीठा), २. शीत (ठण्डा), ३. कोमल, ४. स्नेहयुक्त और घृत वाला, ५. गाढ़ा, ६. चिकना, ७. चिपचिपा, ८. कुछ भारी, ९. देर से बिगड़ने वाला, १०. निर्मल।

इससे पता लगता है कि गोदूध सब गुणों का भण्डार है। महर्षि धन्वन्तरि जो इस गुणों की पुष्टि करते हैं-

तत्त्वनेकौषधिरस प्रसादं प्राणदं गुरु।
मधुरं पिच्छिलं शीतं स्निग्धं श्लक्ष्णं सरं मृदु।।
सर्व प्राणभृतां तस्मात् सात्म्यं क्षीरमिहोच्यते।।

सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान अ० ४५ श्लोक ४८

अर्थ :- दूध अनेक औषधियों का रस है, सब द्रव्यों में निर्मल, प्राण अर्थात् जीवन देने वाला भारी, मधुर, चिपचिपा शीतल स्निग्ध, चिकना, रेचक और कोमल आदि दश गुणों वाला है।

सब प्राणियों के लिये सुखदायी है, अर्थात् अमृत है।

दूध एक पूर्ण भोजन

संसार में किसी भी भोजन की तुलना दूध से नहीं की जा सकती। दूध प्रकृति की पाकशाला में तैयार हुआ एक अद्वितीय भोजन है। दूध में मानव शरीर को धारण और पोषण करने योग्य सभी उपादान विद्यमान हैं। कूवल दूध पर ही सारा जीवन व्यतीत किया जा सकता है और किसी अन्य भोजन की शरीर को आवश्यकता ही नहीं रह सकती। इसीलिये दूध को पूर्ण भोजन का नाम दिया गया है।

दूध स्वास्थ्य रक्षा का सर्वोत्तम साधन है; इसके सेवन से न केवल शरीर का बल, ऊंचाई और वजन बढ़ता है अपितु पुराने रोगी के इलाज में इसका प्रयोग प्राचीन काल से होता चला आया है।

भारतवासी अधिकांश शाकाहारी है। दूध के बिना इनके भोजन में प्रोटीन का अभाव रहता है। अतएव भारतवासियों के लिये दूध सेवन की आवश्यकता विशेष रूप से है लेकिन कितने दुख की बात है कि इसी देश में इस समय दूध का सबसे भारी अकाल है।

देखा तो नहीं, परन्तु सुनते हैं कि किसी समय भारत में दूध की नदियाँ बहती थीं। गो का जो मान सम्मान यहाँ था, उससे दूध की प्रचुरता का अनुमान लगाना कठिन नहीं, लेकिन आज तो दूध भी सपना है और गौ की पूजा भी लकीर पीटना ही रह गया है। प्राचीन युग में वर-वधू को लड़की के माता पिता गोदान करते थे, इसके पीछे यही भावना रहती थी कि बेटी तथा दामाद गाय का दूध पीकर स्वस्थ बलवान बनें ताकि उनकी सन्तति भी बलवान उत्पन्न हो। परन्तु आज यह सुन्दर पद्धति भी रुपये-पैसे के मोल बिक कर राक्षसी प्रथा के रूप में रह गई है।

दूध की इतनी महत्ता हमारे देश में इसीलिये थी कि हमारे पूर्वज दूध के स्वास्थ्यवर्धक उत्तम गुणों से पूर्णतः परिचित थे। दूध एक प्रकार से मनुष्य का पूरा भोजन है। उसमें वे सभी पोषक पदार्थ पाये जाते हैं, जिनकी स्वास्थ्य के लिये आवश्यकता होती है। दूध में अच्छे प्रकार का प्रत्यामिन (प्रोटीन), वसा (फेट), शर्करा, खनिज लवण और विटामिन आदि मिलते हैं। आधा सेर दूध से शरीर को उतनी ही शक्ति मिलती है जितनी ६ अण्डों या ६ पौंड सन्तरों के रस अथवा २ पौंड आलुओं के खाने से प्राप्त होती है।

दूध को लोग कई तरह से काम में लाते हैं। कुछ लोग इसे ठण्डा पीते हैं, कुछ लोग गरम करके सोते समय और कुछ लोग इसमें कोको या ओवल्टीन मिला कर पीते हैं। अगर गाय स्वस्थ हो, उसे हरा चारा, खली और साफ पानी खाने-पीने के लिये समय पर मिलता हो, तथा दूध दुहने वाले का हाथ और बर्तन स्वच्छ हो तो प्रातः धारोष्ण दूध पीना ही सुन्दर है।

धारोष्ण दूध

धारोष्ण दूध से अभिप्राय है, स्तनों से तत्काल निकला हुआ हल्का-हल्का गरम दूध। वागभट्ट में धरोष्ण दूध के विषय में लिखा है-**'धारोष्णममृतोपमम्'** अर्थात् धारोष्ण दूध अमृत के तुल्य है। भावप्रकाश में धारोष्ण दूध के बारे में आया है -

"धारोष्णं गोपयोबल्यं लघुशतं सुधासमम्।
दीपनंच त्रिदोषघ्नं तद्धारा शिशिरं व्यजेत्।।"

अर्थात् गाय का धारोष्ण दूध बलवर्धक, हल्का, शीतल, अमृत के समान, भूख बढ़ाने वाला, तथा तीनों दोषों, वायु, पित्त और कफ को नाश करने वाला है।

धारोष्ण दूध का अर्थ कच्चा दूध कदापि नहीं है दुहकर रखा हुआ ठण्डा दूध तो उबालकर ही लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त जहाँ स्वच्छता के बारे में सन्देह हो, वहाँ तो दूध को एक उफान देकर ही पीना चाहिये।

दूध को खूब औटाकर रबड़ी की तरह बनाकर पीना उसके कुछ आवश्यक अंशों को नष्ट कर पीना है। दूध में शक्कर मिलाये बिना ही उसे पीना चाहिये, क्योंकि उसमें स्वतः शर्करा होती है जो सुपाच्य होती है। शक्कर मिलाने से दूध वायुकारक बन जाता है।

दुग्धाहार और कल्प

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है- प्राचीन काल से लेकर आज तक दूध को सर्वोत्तम भोजन माना गया है। सचमुच दूध है भी अमृत तुल्य। इसमें मानव शरीर के उत्तम पोषण के सभी उपादान मौजूद हैं। इसीलिये इसे पूर्ण भोजन का नाम दिया गया। किन्तु इस पूर्ण भोजन से पूरा लाभ तभी उठाया जा सकता है जब इसका नियमित और समुचित रूप से सेवन किया जाय। अनियमित तरीके से ग्रहण किया हुआ दूध बजाय लाभ के हानि ही पहुँचाता है। स्वास्थ्य-रक्षा तथा संवर्द्धन हेतु दूध कितना उपयोगी है, इसका पता इसी से लग सकता है कि रोगों की चिकित्सा में दूध का प्रयोग प्राचीनकाल से होता चला आ रहा है। हमारे देश में दुग्ध कल्प अर्थात् दुग्ध चिकित्सा कोई नई बात नहीं है। आयुर्वेद में इसकी बड़ी महिमा है। किन्तु आयुर्वेदिक दुग्ध कल्प तथा प्राकृतिक दुग्ध कल्प में एक स्पष्ट अन्तर इस बात का अवश्य है कि आयुर्वेद में कल्प के दौरान औषधियों का प्रयोग किया जाता है और प्राकृतिक दुग्ध कल्प में किसी प्रकार की औषधि की गुँजाइश नहीं है। यह बड़ा अन्तर है।

यह उल्लेखनीय है कि दुग्धाहार तथा दुग्ध कल्प में बड़ा अंतर है। कल्प में हम सुनियोजित विधि से दूध का सेवन करते हैं जब कि दुग्धाहार में जैसे भी हो दूध का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाता है। नियोजन का बड़ा महत्व है। इसी कारण जीर्ण रोगों से मुक्ति पाने के लिए जहाँ अन्य उपचार विधियाँ असफल हो जाती हैं, वहाँ दुग्ध कल्प से लाभ मिलते देखा गया है।
❑❑

सूर्य पर ही मुक्तात्माओं का वास होता है?

(डॉ० सत्य प्रकाश गुप्त, रुड़की, चल०-09997941933)

''दयानन्द सन्देश'' अप्रैल २०१५ के अंक में आदरणीया बहन उत्तरा नेरूर्कर द्वारा लिखित एक लेख "सूर्य पर मनुष्य" प्रकाशित हुआ है। लेख में उन्होंने आदित्य लोक पर मुक्तात्माओं की प्रजा होना और वहा पर ब्रह्म का नित्य साक्षात् और निकट संग होता है दर्शाया है। ये सब आत्माए आपस में भी मन्त्रणा करती हैं और परमानन्द में रहती हैं। यही है सूर्य के वसु होने का रहस्य ऐसा लिखा है।

इस लेख में वैदिक साहित्य के आलोक में यह विचार करने का प्रयास किया जायेगा कि क्या वास्तव में मुक्तात्माओं का केवल सूर्य पर ही वास रहता है अथवा वे आत्माएँ सर्वत्र लोकलोकान्तरों में स्वतन्त्र व स्वछन्द रूप से विचरण करती हैं व निकट संग करती हैं?

शास्त्र जीवात्मा के भोग और अपवर्ग- दो ही प्रयोजनों का कथन करते हैं। "भोगापवार्गार्थ दृश्यम्" (यो०द० २/१८) अर्थात् ईश्वर द्वारा रचित समस्त दृश्यमान जगत जीवात्मा के भोग और अपवर्ग (मोक्ष) के लिए है, यही इस सृष्टि के रचने का प्रयोजन है। इसी प्रयोजनार्थ ईश्वरीय व्यवस्था में जीवात्मा अपने कर्मानुसार भोग भोगने तथा अपवर्ग की प्राप्ति के लिए साधन रूप जड़ प्रकृति के साथ सम्प्रक्त होता है। इस विशाल ब्रह्माण्ड में असंख्यात आकाश गंगायें हैं, प्रत्येक आकाश में असंख्यात् सूर्य हैं तथा प्रत्येक सूर्य का अपना एक सौर मण्डल है, उनमें कितने-कितने स्वतः प्रकाशमान तथा परतः प्रकाश्य ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र व तारागणों का समूह है या होता है, अज्ञात होने से खोज का विषय है।

महर्षि ने इस सम्बंध में सत्यार्थ प्रकाश (अष्टम समुल्लास) में इसका बहुत ही संक्षेप में इस ओर संकेत किया है। महर्षि लिखते हैं.... वैसे ही एक-एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य प्रकाशक और सब लोकलोकान्तर प्रकाश्य है।... ''दो सूर्य चन्द्र होते तो रात और कृष्ण पक्ष का होना ही नष्ट-भ्रष्ट होता। इस लिए एक भूमि के पास एक चन्द्र और अनेक चन्द्र, अनेक भूमियों के मध्य एक सूर्य रहता है।'' इस कथन के अनुसार एक सूर्य के साथ या यों कहे एक सौर मण्डल में अनेक चन्द्र व अनेक भूमियाँ होती हैं। इस कथन की संगति यदि इसके आगे के प्रश्न के उत्तर व श. १८/६/९/४ वाक्य के अर्थ का जितना हिन्दी अनुवाद बनता है उसकी संगति की जाये तो प्रयुक्त "भूगोल लोक" व 'वसु' शब्द में उसके अन्तर्निहित भाव की अभिव्यक्ति हो सकेगी।

प्रश्न- सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं?

उत्तर- ये सब भूगोल लोक और इसमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती है क्योंकि- "यहां श० का वाक्य प्रस्तुत किया है। इसका हिन्दी अनुवाद निम्नवत दिया है।

"पृथिवि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका नाम 'वसु' इसलिए है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा बसती है और ये ही सबको बसाते हैं। जिसलिए वास के निवास करने के घर है इसलिए इनका नाम वसु है।" सम्भवतया संस्कृत भाषा का तो हिन्दी अनुवाद इतना बनता है। जिनके कारण तथा जिनके ऊपर मानव आदि प्राणियों का वास होता है अथवा हो सकता है, वे 'वसु' कहाते हैं।

महर्षि ने प्रश्न के उत्तर में "भूगोल के साथ "लोक" शब्द का प्रयोग किया है, जिसका यह आशय है कि 'भूगोल' में जहाँ-जहाँ २ भूलोक हैं, वहाँ-वहाँ पर मनुष्यादि

प्रजा रहती है। "लोक्यत इति लोकः" लोक शब्द का अर्थ प्रकरणानुसार स्थिति, स्थान, अवस्था, संग्रह तथा अनुभव विशेष के भी होता है। संसार में मनुष्यादि प्राणियों के जीवनार्थ सूर्य व अग्नि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है पर यह आवश्यक नहीं इन पर प्राणी घर बना कर रहे। यदि ये दोनों पदार्थ न हों, तो समस्त प्राणियों के साथ-साथ औषधियों वनस्पतियों आदि-आदि सबका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाये। अतः इसी कारण अग्नि व सूर्य की गणना वसु की श्रेणी में की गई है। महर्षि द्वारा लिखित संस्कृत सन्दर्भों का हिन्दी अनुवाद उनके ग्रन्थों में अर्थान्तर के साथ-साथ, न्यूनाधिक भी मिलता है। मुक्तात्माओं का वास सूर्य पर ही मानने से एक प्रश्न यह उत्पन्न होगा कि जब-जब प्रलयावस्थायें आयेंगी या होंगी, तब-तब उन आत्माओं का वास कहाँ और किस रूप में होगा। यह स्थिति परान्त काल में (३० नील १० खरब ८० अरब वर्ष) १८०० बार प्रलय अवस्था (१५ नील, ५५ खरब २० अरब वर्ष) में आयेगी। उस समय सूर्यादि तो क्या कुछ भी व्यक्त स्थिति (दृश्यमान जगत) में नहीं होगा।

मोक्ष-अवस्था में आत्मा एक मात्र ब्रह्मानन्द में डूबा हुआ उसी को देखता उसी का अनुभव करता है। उस अवस्था में आत्मा ईश्वर के स्वरूप में अवस्थित रहता है। हर पल साक्षात् और हर पल संग रहता है। मोक्ष अवस्था में मुक्तात्मायें प्रलयावस्था या सर्गकाल से सर्वथा अप्रभावित होती हैं, क्योंकि उनके सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं, भौतिक संग नहीं रहता। अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है जब कि प्रलयावस्था में अमुक्त आत्माओं के दोनों शरीर (स्थूल व सूक्ष्म) अपने कारणों में लीन हो जाने से प्रसुप्त अवस्था में बिना किसी प्रकार के भोग (सुख-दुख) के रहती हैं।

मोक्ष-अवस्था मुक्त-अवस्था के सम्बंध व स्थिति के सम्बंध में सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित तथ्यों का संक्षिप्त सार निम्नवत है।

१. मुक्त जीव सब लोकों और सब कामों को प्राप्त होता है। जीव शुद्ध दिव्य नेत्र और शुद्ध मन से देखता व रमण करता है।

२. परमेश्वर सर्वव्यापक होने से ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहा ईश्वर न हो अतः मुक्त जीव सर्वत्र रमण करते हैं, सर्ग काल में विचरण करते हुए आदित्य लोक पर जाने के लिए उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता।

३. मुक्त जीवन अनन्त सर्वव्यापक ब्रह्म में सर्वत्र स्वतन्त्र व स्वछन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि (सर्ग व प्रलयावस्था में) को देखता, अन्य मुक्तात्माओं से मिलता, सृष्टि क्रम को देखता हुआ लोकलोकान्तरों में तथा जितने ये लोग दीखते और नहीं दीखते, उन सब में अबाध गति से विचरण करता है।

४. वह मुक्तात्मा सब पदार्थों को जो कि उसके आगे के हैं सब को देखता, ज्ञान में वृद्धि करता क्योंकि जितना ज्ञान अधिक होता है, उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है।

५. स स्वराड़ भवति तस्य सर्वेपु लोकेशु कामचारो भवति। छा० ८/२५/२ वह (आत्मा) प्रकृति से मुक्त हो जाता है, अर्थात् प्रकृति के वश नहीं रहता। निर्बाध गति से सब लोकों में इच्छानुसार संचरण करता है।

६. यहा यह ध्यातव्य है, मुक्त-आत्मा सत्य संकल्प तथा अतिशय ऐश्वर्य वाला होने के बावजूद असीमित व अनन्त ऐश्वर्य वाला कभी नहीं हो सकता और न ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य अधिपति वाला ही हो सकता है, क्योंकि उसका यह ज्ञान नैमित्तिक है, स्वाभाविक नहीं। नैमित्तिक ज्ञान सदैव किंचित् मात्र यानि अत्यल्प व अस्थायी होता है।

❑❑

चान्द्रमास पूर्णिमा को समाप्त हो या अमावस्या को?

(आचार्य दार्शनेय लोकेश)

रांची, बिहार से एक महानुभाव ने जानना चाहा है कि मास पूर्णिमा को समाप्त होता था या अमावस्या को। उनको उत्तर दे दिया गया है। प्रस्तुत है, उत्तरित उत्तर जिसे जानना, पंचांगकारों ही नहीं, ज्योतिष में तनिक भी अभिरुचि रखने वाले, सभी लोगों के लिए अत्यावश्यक है। इस सन्दर्भ में एक टिप्पणी श्री मोहन कृति आर्ष तिथि पत्र-२०७२ के पृष्ठ ६३ पर भी उपलब्ध है।

इसमें कोई शक नहीं कि प्रायः 'अमान्त और पूर्णिमान्त' दोनों ही ढंगों में चंद्रमासों की गणना देखने को मिलती है तथापि, निम्नलिखित कारणों से अमानत पद्धति वैदिक और वास्तविक पद्धति लगती है। मुझे जो भी कुछ वैदिक अध्ययन का अनुभव प्राप्त है, उसके अन्तर्गत मैं कह सकता हूँ कि मुझे अमान्त के समर्थन में तो वेद मंत्र मिला है किन्तु पूर्णिमान्त के सन्दर्भ का एक भी मन्त्र नहीं मिला है। अस्तु,

१. ज्योतिष सन्दर्भ का पहला और प्रामाणिक ग्रन्थ है लगध मुनि का "वेदांग ज्योतिष" और इस ग्रन्थ के षष्ठं श्लोक (माघ शुक्ल प्रपन्नस्य...) में स्पष्टतया शुक्लादि अर्थात् अमान्त या अमावश्यान्त पद्धति का स्पष्टीकरण है। तात्पर्य स्पष्ट है कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा ही किसी भी चन्द्रमास की पहली तिथि होती है, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा नहीं।

२. ऋग्वेद के १०/८४/१६ वें मन्त्र में (नवो नवो भवति जायमानो।....) स्पष्ट तौर पर पहले कलात्मक रूप से बढ़ते चन्द्रमा को ही स्वीकार किया गया है अर्थात् शुक्ल पक्ष ही पहला पक्ष है, ऐसा वैदिक निर्देश उपलब्ध है। चूँकि यह वेद का प्रमाण है इस कारण से "शुक्लादि या अमान्त" के पक्ष में और अधिक किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रह जाती। तथापि-

३. महाभारत के अश्व.पर्व ४४/२ (अहः पूर्व ततो रात्रिः मासाः शुक्लादयाः स्मृतः) चांद्र मास गणना के शुक्लादि ढंग को स्पष्ट किया गया है।

४. इस एक बात से सभी सहमत हैं कि सृष्ट्यादि में पहली तिथि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा ही थी या हो सकती है। संकल्पना के अन्तर्गत भी यह तथ्य तर्कसंगत नजर आता है। प्रश्न ये होता है कि जब मास का उद्घाटन शुक्ल प्रतिपदा से हुआ होगा तो स्वाभाविक ही मध्य में पूर्णमासी (न कि पूर्णमास) घटित हुई ही होगी और अन्त में अमावश्या। यदि नहीं, तो क्या सृष्ट्यादि का प्रथम मास १५ ही दिनों का हुआ होगा? और फिर ऐसे में उसको "मास" की संज्ञा से कैसे कह सकते हैं?

५. उत्तर भारत के लोग क्यों नहीं समझते कि वर्ष गणना यदि शुक्लादि से हो रही है, तो मास गणना कृष्णादि से क्यों करके हो सकती है? ये मेरी मुर्गी की डेढ़ टाग क्यों?

६. स्वनामधन्य ज्योतिर्विद, श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने "भारतीय ज्योतिष" में "पूर्वापर" शीर्षक से एक खास बात कही है और जिसको यहाँ याद कर लेना भी आवश्यक है। वे लिखते हैं, "पूर्णिमान्त मानने से कृष्णपक्ष पहिले और शुक्लपक्ष उसके बाद आता है। अतः कृष्ण पक्ष की 'पूर्व' और शुल्क पक्ष की 'पर' संज्ञा होनी चाहिए। परन्तु वर्णन ऐसा नहीं है। शुक्ल पक्ष को पूर्व और कृष्ण पक्ष को पर कहा गया है।

पूर्वपक्षं देवान्व सृज्यन्त। अपर पक्षामन्वसुराः।.... तै. ब्रा. २/२/३/१

पूर्वपक्ष में देवता उत्पन्न हुए और अपर पक्ष में असुर, इसलिए देवताओं की जय हुई और असुरों की पराजय।

पूर्वपक्षश्चितयः अपरपक्षाः पुरीषम्।.... तै. ब्रा. ३/१०/४/१।....

७. पूर्णमा, पूर्णिमासी और पूर्णिमा इन सभी शब्दों का लिंग, स्त्रीलिंग है। इनका शब्दार्थ भी उस एक दिन से है, जिस दिन कि चन्द्रमा (कलाओं से) पूर्ण हो जाता है। इसे बोलचाल की भाषा में 'पूनो' भी इसी अर्थ में ही कहा जाता है। ध्यातव्य है कि यदि इस में मास अर्थ से पूर्णता का आशय होता तो विशेषण भी तदनरूप पुर्लिंग ही होना चाहिए था। अतः 'पूर्णमासी या पूर्णिमासी' मास के पूर्ण हो जाने की द्योतक नहीं है।

८. तैत्तरीय ब्राह्मण (३/१०/१/१ और २) में कृष्ण पक्ष की अन्तिम तिथि वाली रात्रि को (अमावस्या की रात्रि को) 'कामदुधा' और शुक्ल पक्ष की अन्तिम तिथि वाली रात्रि को (शुक्ल पक्ष की रात्रि को) पूर्णिमासी नाम दिया है। अस्तु, यहा भी ये शब्द पक्षांतिक रात्रि के विशेषण हैं ना कि मासान्त के।

९. सभी पंचांगकार शुक्ल पक्ष की अन्तिम तिथि को १५ और कृष्ण पक्ष की अन्तिम तिथि को ३० लिखते हैं जबकि दोनों ही पक्षों की प्रतिपदा से चतुर्दशी तक की तिथियों को १ से १४ के क्रम में ही लिखा जाता है। एक विचार की बात, यह भी है ही।

१०. 'आदित्याद्वै चन्द्रमा जायते' (आदित्य से चन्द्रमा जन्मता है).... ऐ. ब्रा. ५०/५

आइये, तनिक विचार करें कि ऐसा क्यों और कब हो सकता है? अगर मैं कहूँ कि यही तो घटना है, जो कल्पादि के ४७४०० दिव्य वर्ष के अनन्तर गृह नक्षात्रादि के संचालन के साथ (सृष्टि के आदि में) हुयी थी। सृष्टि के आदि में (देखें सूर्य सिद्धान्त के मध्यमाधिकार श्लोक २४) जब सभी ग्रह शून्य पर रहे होंगे और सूर्य की सापेक्ष चन्द्रमा की गति ने पहली तिथि बनायी होगी तो लगा होगा, जैसे कि चन्द्रमा सूर्य में से उत्पन्न हो रहा हो। आज भी प्रत्येक शुक्ल प्रतिपदा के दिन यही होता है। इसीलिये काव्यात्मक उपमा से चित्रण किया गया है कि 'आदित्य से चन्द्रमा जन्मता है' और ऐसा होना बहुत स्वाभाविक है। यहाँ पर मैं यह भी स्पष्ट करना चाहूँगा कि कल्पादि के बारे में कुछ भी संकेत नहीं दिया जा सकता है किन्तु उक्त सूर्य सिद्धान्त के कथित सृष्टि की शुरूआत में 'भानु आदि का शून्यारम्भ (आज की भाषा में मेषारम्भ भी कह सकते हैं) और चंद्र यात्रा की शुक्लादि" अवश्य कह सकते हैं। ऐसा यदा-कदा होता भी रहता है, जब मेषारम्भ और चैत्र शुक्लारम्भ एक ही दिन होता है। श्री मोहन कृति आर्ष तिथि पत्रक के सब पाठकों ने देखा कि ३० गते, मधुमास संवत् २०७२ तदनुसार शनिवार, २१ मार्च २०१५ को ऐसा ही हुआ था।

११. जो पंचांग कृष्णादि या पूर्णिमान्त मासगणना का व्यवहार करते हैं, वे भी अधिमासों को शुक्लादि या अमान्त के ढंग में ही प्रस्तुत करते हैं। ऐसा क्यों? श्री मोहन कृति आर्ष पत्रकम् (एक मात्र वैदिक पंचांग) तो ऐसा नहीं करता? अस्तु, बनावटी ढंग को छोड़कर समस्त भारत के पंचांगकारों को सैद्धांतिक और एकरूपता की खातिर सर्वत्र शुक्लादि या अमान्त पद्धति को ही अपनाना चाहिए। अस्तु, मैं पूरी विनम्रता और सांस्कृतिक जागृति से भारतीय मनीषा को आगाह करना चाहता हूँ कि पूर्णिमान्त पद्धति चन्द्रमा के लिए एक प्रकार से अल्पजीविता का अपशकुन है और ऐसा करते रहना समग्र संस्कृति के लिए भी शुभ शकुन नहीं हो सकता। चान्द्रमास सदैव शुक्लादि या अमान्त ही हुए हैं, होते रहेंगे और होने ही चाहिए।

❑❑

पण्डित लेखराम जी संकलित महर्षि दयानन्द जी के जीवन चरित्र सम्बन्धी एक चिन्तनीय स्थल

(भावेश मेरजा, गुजरात)

पण्डित लेखराम जी आर्यपथिक द्वारा संकलित महर्षि दयानन्द के विख्यात उर्दू जीवनचरित्र के उपलब्ध हिन्दू अनुवाद 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र' में एक महत्वपूर्ण स्थल को लेकर मुझे शंका हुई। इस ग्रन्थ के आरम्भ में प्रकाशित महात्मा मुन्शीराम जी (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द जी) लिखित 'भूमिका' प्रकरण में 'ला० आत्माराम जी का योगदान' उपशीर्षक अन्तर्गत निम्न विवरण पढ़ने को मिलता है-

"द्वितीय अध्याय तक के प्रत्येक विषय का उत्तरदायित्व स्वर्गीय पण्डित लेखराम जी पर है।... इस पुस्तक के तृतीय भाग अध्याय प्रथम में स्वामी दयानन्द जी के गुरु (ऋषिवर विरजानन्द सरस्वती) का संक्षित जीवनचरित्र यद्यपि ला० आत्माराम जी ने अपनी भाषा में लिखा है, तथा उसका मूल उन नोटों पर है जो कि पण्डित लेखराम जी उस सम्बन्ध में छोड़ गये हैं। इससे आगे इस भाग के द्वितीय अध्याय से समाप्ति पर्यन्त सारा विषय ला० आत्माराम जी की लेखनी से निकला हुआ है।" (पृ. २१, षष्ठम् संस्करण २०६४ वि., २००७ ई० सम्पादक : डॉ० भवानी लाल भारतीय, प्रकाशक : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली)

ध्यातव्य है कि इस 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र' ग्रन्थ में कुल तीन भाग हैं- प्रथम भाग में दो अध्याय हैं, दूसरे भाग में आठ अध्याय हैं और तीसरे भाग में दस अध्याय हैं। अतः महात्मा मुन्शीराम जी द्वारा निर्दिष्ट 'द्वितीय अध्याय तक के' से इस ग्रन्थ के कौन से भाग का द्वितीय अध्याय अभिप्रेत है, यह ठीक से समझ में नहीं आता, अर्थात् प्रथम भाग के द्वितीय अध्याय तक के, या द्वितीय भाग के द्वितीय अध्याय तक के?

इसका समाधान पाने के प्रयोजन से मैंने उपर्युक्त शंका कई परिचित आर्य मित्रों को पहुँचाई और उनसे प्रार्थना की कि अगर किसी को इसका समाधान ज्ञात हो तो सूचित करने की कृपा करें। परिणामस्वरूप आज पर्यन्त कुल तीन सुविज्ञ आर्य सज्जनों ने एतद् विषयक अपने मूल्यवान अभिप्राय सूचित किए हैं, जो क्रमशः निम्नलिखित हैं-

१. श्री मनमोहन कुमार जी आर्य (देहरादून)- मेरे पास इस समय पण्डित लेखराम कृत महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र वि० सम्वत् २०४१ वाला संस्करण है। इसमें स्वामी विरजानन्द जी वाला अध्याय १ तृतीय भाग में है। इससे पूर्व प्रथम भाग व द्वितीय भाग हैं। प्रथम भाग में अध्याय १ व अध्याय २ हैं इसके बाद द्वितीय भाग में ८ अध्याय हैं इन दो भागों के बाद तृतीय भाग का पहला अध्याय १ है, जिस पर विषय सूची में शीर्षक 'स्वामी विरजानन्द जी' छपा हुआ है तथा इसके आगे क्रमांक २६ अंकित है। इस विरजानन्द जी वाले अध्याय से पहले के दो 'भाग' (लगता है कि महात्मा मुन्शीराम जी ने इसे ही शायद 'अध्याय' लिखा है) के सभी विषयों का उत्तरदायित्व वे पण्डित लेखराम जी पर बता रहे हैं। तृतीय भाग के अध्याय १ के बारे में उनका कहना है कि यह अध्याय लाला आत्माराम जी ने अपनी भाषा में लिखा है, परन्तु यह पण्डित लेखराम जी द्वारा छोड़े गये नोट्स पर आधारित है। इसके बाद तृतीय भाग के अध्याय २ से अध्याय १० के बारे में महात्मा मुन्शीराम जी ने कहा है कि यह सारा लाला आत्माराम जी की लेखनी से निकला हुआ है। पुस्तक के मेरे वाले संस्करण में 'स्वामी विरजानन्द जी' का क्रमांक २६ वाला अध्याय ८५६-८६८ पृष्ठ पर है। इसका तात्पर्य है कि इस ग्रन्थ की पृष्ठ ८५५ तक की सामग्री लेखराम जी ने अपने बलिदान से पूर्व मुद्रणालय

के कातिबों (अर्थात् लिखने वाले लेखकों) को लिखवा दिया था, जिसकी पृष्ठ संख्या का अनुमान महात्मा मुन्शराम जी क अनुसार लगभग ६०० पृष्ठ लिखा गया है। इसके बाद पृष्ठ ८५६ से ८६८ वाला भाग स्वामी विरजानन्द जी पर है, जिसे लाला आत्माराम जी ने पण्डित लेखराम जी के नोट्स के आधार पर लिखा और पृष्ठ ८६८ से अन्त का पुस्तक का शेष भाग लाला आत्माराम जी ने तैयार किया है। महात्मा मुन्शीराम जी के लेख और जीवनचरित्र को देखकर मैं यही समझ पाया हूँ।"

इस पर मैंने श्री मनमोहन कुमार जी का धन्यवाद करते हुए उन्हें निवेदन किया कि वैसे तो आपने ठीक लिखा है, मगर क्या यह क्लिष्ट धारणा नहीं लगती कि महात्मा मुन्शीराम जी जैसे व्यक्ति ने 'भाग' को 'अध्याय' लिखने की भूल कर दी? जबकि ग्रन्थ के विभाजन में भाग व अध्याय दोनों ही शब्दों का प्रयोग किया गया हो। आपका शेष अवलोकन तो उचित ही है।

इसके प्रत्युत्तर में श्री मनमोहन कुमार जी ने पुनः लिखा- "महात्मा मुन्शीराम जी से 'भाग' के स्थान पर 'अध्याय' लिखा जा सकता है और यह भी सम्भव है कि प्रथम व बाद के किसी संस्करण में मुद्रणालय के शब्द संयोजकों में से किसी एक से यह त्रुटि हो गई हो तथा प्रूफ देखने वालों का ध्यान इस पर न गया हो। यह भी सम्भव है कि आद्य उर्दू ग्रन्थ में 'अध्याय' के स्थान पर शुद्ध शब्द 'भाग' का ही प्रयोग किया गया हो व उर्दू से हिन्दी में अनुवाद के अवसर पर यह त्रुटि हुई हो। यदि ऐसा हुआ हो तो यह त्रुटि किसी उर्दू के जानने वाले विद्वान् द्वारा ही उर्दू में प्रकाशित प्रथम संस्करण को देखकर ही जानी जा सकती है। पता नहीं, उर्दू में प्रकाशित प्रथम संस्करण कहाँ होगा? मेरे ये अनुमान उचित हैं या नहीं पता नहीं, परन्तु मुझे ऐसा सम्भव हुआ लगता है।" हमने श्री मनमोहन कुमार जी को सधन्यवाद बताया कि- आपकी ये बातें विचारणीय हैं।

२. श्री धर्मपाल जी आर्य (डॉ० विवेक आर्य जी के माध्यम से)- "यदि 'द्वितीय अध्याय तक के' के स्थान 'द्वितीय भाग तक के'- ऐसा समझ कर देखें।"

३. डॉ. हरिश्चन्द्र जी (ग्रेटर ह्यूस्टन)- "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि "द्वितीय अध्याय तक के प्रत्येक विषय का उत्तरदायित्व स्वर्गीय पण्डित लेखराम जी पर है।... इस पुस्तक के तृतीय..." में 'द्वितीय अध्याय' के स्थान पर 'द्वितीय भाग' होना चाहिए। यदि आप मुझे इस पुस्तक की अनुक्रमणिका (इन्डेक्ष) के पृष्ठ को स्कैन कर के भेज सकें तो सुविधा होगी।"

मैंने अनुक्रमणिका (इन्डेक्ष) के पृष्ठ स्कैन कर डॉ० हरिश्चन्द्र जी को तत्काल पहुँचाए। तत्पश्चात् उन्होंने अपना अभिप्राय व्यक्त करते हुए पुनः लिखा-

"मुझे अनुभाग (सेक्शन) की संख्या से लाभ हुआ है। उस क्रम में देखे तो :

१- महात्मा मुन्शीराम जी द्वारा लिखित

भाग प्रथम

२- प्राक्कथन- लेखराम जी द्वारा लिखित

३- महर्षि का स्वकथित चरित्र- महर्षि जी द्वारा लिखित

भाग द्वितीय-

४ से २८ तक- लेखराम जी द्वारा लिखित

भाग तृतीय

२६ (अध्याय १)- लेखराम जी द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर आत्माराम जी द्वारा लिखित

३० से ४० तक- आत्माराम जी द्वारा लिखित

अब यह स्पष्ट हो जाता है कि पुस्तक के ३ भाग क्यों किये गए हैं : (१) भाग प्रथम - मुख्यतः महर्षि जी द्वारा लिखित है- प्राक्कथन तो प्राक्कथन ही है। (२) भाग द्वितीय- पण्डित लेखराम जी द्वारा लिखित है। (३) भाग तृतीय- आत्माराम जी द्वारा लिखित है (इसका अनुभाग २६ जो अध्याय १ में है।)- पण्डित आत्माराम जी द्वारा लिखित है किन्तु लेखराम जी द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर- इसी बात को महात्मा मुंशीराम

जी स्पष्ट कर रहे हैं। किन्तु 'द्वितीय भाग' के स्थान पर 'द्वितीय अध्याय छप गया है। कहने का अभिप्राय है कि पुस्तक के ३ भाग इसलिए बनाए गए हैं क्योंकि ३ लेखक हैं- (१) महर्षि दयानन्द जी (२) पण्डित लेखराम जी और (३) पण्डित आत्माराम जी। पुस्तक की 'भूमिका' महात्मा मुन्शीराम जी द्वारा लिखित है।"

अतः उक्त तीनों महानुभावों के मन्तव्यों पर विचार करने से यही प्रतीत होता है कि ग्रन्थ की 'भूमिका' के इस आलोच्य स्थल में 'द्वितीय अध्याय तक के' के स्थान पर 'द्वितीय भाग तक के' पढ़ने से इस शंका का सम्यक् समाधान हो जाता है। फिर भी 'दयानन्द सन्देश' के सुधी पाठक एवं महर्षि दयानन्द के जीवनी साहित्य के गम्भीर अध्येता इस पर अधिक विचार कर अपने मन्तव्य से पाठकों को लाभान्वित कर सकते हैं कि जिससे भविष्य में किसी को इस महत्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में कोई भ्रान्ति न रहे।

❑❑

पृष्ठ ११ का शेष

पाकिस्तान बनने के बाद शाहनवाज खान पाकिस्तान चले गये, पर बाद में प्रधानमंत्री नेहरू ने उन्हें वापस बुला लिया और अपने मंत्रीमण्डल में सचिव का पद दे दिया। १९५६ ई० में नेता जी सुभाष की मृत्यु की जाँच के लिए गठित शाहनवाज आयोग का उन्हें अध्यक्ष बनाया गया और जब उन्होंने नेताजी की विमान दुर्घटना में हुई मृत्यु की घोषणा कर दी, तो उन्हें रेल राज्य-मंत्री का पद दे दिया। देश की जनता शाहनवाज खान को नेताजी का करीबी मानती थी। अतः भ्रमित हो गई, पर १९६२ ई० तक भी नेहरू जी के पास नेताजी की मृत्यु का कोई प्रमाण नहीं था।

मैं ऊपर वर्णित व्यक्तियों के अच्छे लेखन व कार्य के लिए उनके प्रति कृतज्ञता से नतमस्तक हूँ, पर जहाँ सहमत नहीं हुआ जा सका, उन प्रसंगों पर अपने विचार प्रकट किए हैं, ताकि उनकी महानता के कारण साधारण जन उनके सभी लेखन को प्रमाण मानकर भ्रमित न हों। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि महर्षि दयानन्द जैसे महान् योगी के सम्पर्क में रहकर भी भीमसेन जैसा पण्डित अपनी धूर्तता नहीं छोड़ पाया और बाद में तो उसने न केवल आर्यसमाज छोड़ दिया, अपितु वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध प्रचार करने की धृष्टता भी की। केवल महान व्यक्ति का सन्सर्ग व सरकारी सम्मान ही किसी लेखक के प्रामाणिक होने का कारण नहीं है। अभी हम देख रहे हैं कि देश की जनता ने जिनकी प्रतिभा का सम्मान किया और सरकार ने जिन्हें पदक प्रदान किये, उनमें से कई साहित्यकार, फिल्मकार व इतिहासकार (जो लगभग कम्यूनिस्ट व कांग्रेसी हैं) मोदी सरकार पर देश में तथाकथित असहिष्णुता के वातावरण का आरोप लगाकर अपने सम्मान (पदक) लौटा रहे हैं। उनमें से कई तो देश-विदेश में भारत के विरुद्ध बोलते रहते हैं। 'जी न्यूज' समाचार चैनल ने ६ नवम्बर को अरुन्धती राय द्वारा समय-समय पर भारत, पाकिस्तान, अमेरिका आदि देशों में की गई भारत विरोधी बयानबाजी का पर्दाफाश किया। ऐसे लोगों को भी यह देश सहन करता है, फिर भी इस पर असहिष्णुता का आरोप लगाया जाता है। यदि वास्तव में यह देश छल, कपट, अन्याय, दुराचार, देशद्रोह, शोषण आदि करने वालों के प्रति असहिष्णु हुआ होता, तो आज इस देश का अन्न जल खाने-पीने वाले तथाकथित साहित्यकार देशद्रोह की हिम्मत न करते।

❑❑

वैदिक मन्त्रों के अर्थीकरण में ऋषि आदि का महत्व-3
(उत्तरा नेरूर्कर)

पिछले दो मासों के विषय को पुनः इस लेख में आगे बढ़ा रही हूँ, और मन्त्रों के अर्थीकरण में ऋषि, छन्छ व स्वर के महत्त्व को दर्शाने के लिए विभिन्न छन्दों के उदाहरण दे रही हूं। नवम्बर-15 के अंक में मैंने अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् के उदाहरण दे दिए हैं। शेष पाँच छन्दों को, दिसम्बर में बताए अर्थों को परखने के लिए, यहाँ दे रही हूं।

गायत्री छन्द का उदाहरण

इस छन्द से सबसे पहले हमें मन्त्र का ही स्मरण होता है। सो, उसी का उदाहरण देना यहाँ सबसे उपयुक्त है-

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।। यजु० 36/3।।

ऋषि- विश्वामित्र। देवता- सविता।

छन्द/स्वर- 'भूर्भुवः स्वः' का दैवी बृहती/मध्यम, शेष का निचृद्गायत्री/षड्जः।

मन्त्र का तात्पर्य- प्रथम भाग के बड़े विशाल अर्थ हैं, जो कि तैत्तिरीयोपनिषद् आदि में द्रष्टव्य हैं। इसी से बृहती का अर्थ संगत हो जाता है। तथापि मैंने दैवी बृहती के विषय में पूर्व चर्चा नहीं की है, सो यहां भी नहीं कर रही हूँ। यहाँ केवल गायत्री छन्द के अंश को देखते हैं- उस प्रेरक व (सब जगत् के) स्रष्टा, दिव्य गुणों के कारण देव-संज्ञक (परमात्मा) के शुद्ध, वरणीय (स्वरूप) का हम ध्यान करते हैं, जो (परमात्मा) हमारी बुद्धियों को (सन्मार्ग में) प्रेरित करता है।

विशेष-

1. मन्त्र का प्रधान विषय- देवता- 'सविता' है, यह तो मन्त्र के तात्पर्य से स्पष्ट ही है। मन्त्र में भी यह शब्द है। सविता का मुख्य तात्पर्य यहाँ 'प्रेरक' से है- वह प्रेरक ब्रह्म हमारी बुद्धियों को सदा सन्मार्ग में लगाए।

2. मन्त्र का दूसरा विषय- ऋषि' 'विश्वामित्र' है। जिस परमात्मा का वर्णन इस मन्त्र में है, वह वो है जो सब का मित्र होने से सबका वरण करने योग्य है। जो भी प्रेरणा वह हमें देता है, वह हमारी भलाई के लिए देता है, जिस प्रकार एक सच्चा मित्र देता है, चाहे वह उस समय हमें कितनी ही कटु लगे।

3. पिछले मास के लेख में, गायत्री छन्द के मुख्य रूप से चार अर्थ हमने देखे थे- 1) पाँच प्रकार का रक्षा-प्रकरण 2) स्तोता का रक्षण 3) परमात्मा की स्तुति 4) तीन प्रकार की प्राप्ति कराने वाला ('तीन पाद वाला' अर्थ तो स्पष्ट ही है)। प्रकृत् मन्त्र में प्रथम अर्थ प्रतीत होता है कि सम्बद्ध नहीं है। सन्मार्ग में बुद्धि को प्रेरित करने से पापों से संरक्षण होता है, जिससे हम दुःखों से छुटकारा पाते हैं। इससे दूसरा अर्थ सही हो गया। तीसरे अर्थ में, हम परमात्मा की तीन स्तुतियाँ पाते हैं- सविता, भर्गः देवः। इससे यह अर्थ सिद्ध होता है।

चौथा अर्थ यहाँ अत्यन्त सुन्दर है। यह मन्त्र अन्य सभी वैदिक मन्त्रों से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। राजर्षि मनु ने भी हर ब्राह्मण को दोनों सन्ध्याओं में इसका जप करने का आदेश दिया है। जहाँ तक मुझे समझ में आया है, इसका कारण यह है कि इस एक मन्त्र से ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना सभी एक-साथ हो जाती है। स्तुति हमने अभी देखी। प्रार्थना यहाँ यह है कि परमात्मा हमारी बुद्धि को सदा सन्मार्ग में लगाए। उपासना के लिए मन्त्र आदेश देता है कि हम मन्त्र में बताए हुए उसके स्वरूप का ध्यान करें। यह स्तुति, प्रार्थना व उपासना ही मन्त्र में तीन विषयों

की प्राप्ति है।

4. षड्ज स्वर से छः वस्तुओं/विषयों से उत्पन्न या उनकी प्राप्ति अर्थ सम्भव है। मैंने पिछले लेख में भी थोड़ा संकेत दिया था, परन्तु उसमें पूर्व भाग भी सम्मिलित था। यथा- भूः, भुवः स्वः सविता, भर्गः देवः- ये परमात्मा के छः नाम इस मन्त्र में मिलते हैं। इसके सिवा यहाँ क्या अर्थ हो सकता है, यह विचारणीय है। इस प्रकार विश्लेषण करने से, जबकि अर्थ में विशेष अन्तर नहीं आया, तथापि कौन-कौन से विषय महत्त्वपूर्ण हैं, इस पर हमारा ध्यान केन्द्रिता हुआ, और किस प्रकार से हमें उपदेश देखना चाहिए (विश्वामित्र आदि), यह भी स्पष्ट हुआ। देवता, ऋषि, छन्द और स्वर की यही भूमिका है। दूसरे, स्वर षड्‌ को छोड़कर, हमारे किए गए अर्थों का प्रमाण भी प्राप्त हुआ।

शेष उदाहरणों के लिए मैंने, बिना अधिक विश्लेषण किए, यजुर्वेद का सत्रहवाँ अध्याय खोला, क्योंकि उसमें मन्त्रों की भाषा अधिक है, और सभी छन्दों के उदाहरण पाना आसान था।

उष्णिक् छन्द का उदाहरण

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च।
अन्तिमित्रश्च दूरेअमित्रश्च गणः।।

यजु० 17/83।।

ऋषि- सप्तऋषयः। देवताः मरुतः।
छन्द/स्वर- भुरिगार्ष्युष्णिक्/ऋषभः।

मन्त्र का तात्पर्य- जो (ऋत=) विज्ञान की उन्नति करे/कराए, (सत्य=) धर्म की उन्नति करे/कराए, जो अपने पराक्रम से शत्रु सेनाओं को जीत ले, जिसकी स्वयं की सेना बलशाली हो, जिसके मित्र पास हों और शत्रु दूर हों, वह मनुष्य ही गणनीय = प्रशंसनीय है।

विशेष-

1. मन्त्र का मुख्य विषय- देवता- 'मरुत् (बहुवचन) 'मरुत्' शब्द मृङ् प्राणत्यागे से औणादिक उति (उ. 1/94) प्रत्यय लगकर बना है, जिस पर ऋषि दयानन्द का भाष्य है- **म्रियते मारयति वा स मरुत् मनुष्यजाति पवनो वा**– अर्थात् जो मरे या मारे, वह मरुत् होता है, और इसके मुख्य रूप से दो अर्थ हैं- मनुष्यजाति और पवन। सो, मरणधर्मा व अन्यों को मारने वाली मनुष्य-जाति के लिए यहाँ उपदेश है, जिसमें स्पष्टतः मरने-मारने का भी प्रसंग है (सेनजित्, सुषेणजित्)। हमारे प्राण किस प्रकार की प्राप्ति में लगें, हम अपना जीवन किन लक्ष्यों के लिए जीएं, यह भी पवन-सम्बन्धी प्रसंग यहाँ मिल रहा है।

2. मन्त्र का दूसरा विषय- ऋषि- 'सप्तऋषि (बहुवचन)' हैं। 'ऋषि' शब्द **ऋषी गतौ** धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसके अर्थ हैं 'ज्ञान, प्राप्ति व गमन करने वाला'। यहाँ हमें सात प्रापणीय विषय मिलने चाहिए, और आशानुसार वे मिलते भी हैं। ये हैं- ऋतजित्, सत्यजित्, सेनजित्, सुषेणजित्, अन्तिमित्र; दूरेअमित्रः और गणः। आश्चर्य। यही नहीं, मैंने आगे-पीछे के मन्त्रों को भी परखा, जिनके ऋषि 'सप्तऋषयः' हैं। सभी मन्त्रों में इस प्रकार एक विषय वाले सात-सात शब्द प्राप्त होते हैं। आप भी स्वयं देखें। इस तथ्य से भी 'ऋषि' का मन्त्रार्थवाची होना सिद्ध होता है।

3. उष्णिक् छन्द के अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द ने कहा था- **त्रयः कर्मोपासनाज्ञानानि वत्सा इव यस्य सः पराक्रमम् यद् दुःखानि दहन्ति तम्**- अर्थात् जिस पराक्रम के तीन--कर्म, उपासना और ज्ञान-बेटों के समान हैं, और जो दुःखों को जला देता है। यह अर्थ महर्षि की दिव्य दृष्टि और प्रगाढ़ ज्ञान को ही दर्शाता है कि प्रस्तुत मन्त्र के विषय में न सोचते हुए भी उन्होंने 'पराक्रम' शब्द का प्रयोग किया। वस्तुतः यहां पराक्रम ही विषय है, जो कि कर्म (सेनजित्, सुषेणजित्), उपासना (=पास बैठना) (अन्तिमित्र, दूरेअमित्र) और ज्ञान (ऋतजित्, सत्यजित्) में झलक रहा है। इन सब से हमारे दुःखों का दहन होता है।

दूसरा जो विषय हमने देखा था, वह था 'स्नेह'। सो, यहाँ 'गणः' से यही प्रियत्व कहा गया है- जो उपर्युक्त छः गुणों वाला होता है, वह सब का प्रिय हो

जाता है।

तीसरा अर्थ जो शौच था, उसका भी यहाँ सम्बन्ध बनता है- उपर्युक्त गुण तभी प्राप्त होते हैं, जब हम अपनी बुद्धि, कर्म व संग शुद्ध करते हैं।

4. ऋषभ स्वर से बल का ग्रहण होना चाहिए, तो वह तो सर्वत्र 'जितु' शब्द से स्पष्ट ही है।

इस प्रकार यहाँ भी हमको ऋषि आदि से कुछ ध्यातव्य बिन्दु मिले, और हमारे पूर्वोक्त अर्थ सिद्ध हुए।

बृहती छन्द का उदाहरण

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहं अन्तरिक्षादि्दवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्जोतिर्गामहम्।।
यजु.17/67।।

ऋषि- विधृतिऋषिः। दवता-अग्निः।

छन्द/स्वर- पिपीलिकामध्या बृहती/मध्यमः।

मन्त्र का तात्पर्य- जीवन्मुक्त योगी के देहत्याग पर क्या होता है, उसका यहाँ वर्णन मिलता है- मैं प्रथिवी से अन्तरिक्ष पर चढ़ जाती हूँ। अन्तरिक्ष से सूर्य पर चढ़द्व जाती हूँ। सूर्य से, 'नाक' के ऊपर से, स्वर्ग की ज्योति मैं प्राप्त करती हूँ।

विशेष-

1. मन्त्र का मुख्य विषय- देवता- 'अग्नि' है। यहाँ 'अग्नि' का अर्थ 'पूर्ण विद्वान्' है। इसमें वेद का ही प्रमाण है- **'यो अग्निः कव्यवाहनः...ऋतावृधः...।।यजु० 19/65।।- अग्निरिव विद्यासु प्रकाशमानः (म.व्या.)'** अर्थात् जो अग्नि के समान विद्याओं में प्रकाशमान है, प्रशस्त कर्म कर्ता है और वेदक ज्ञान से पूर्ण है। ऐसा ही व्यक्ति मोक्ष की कामना कर सकता है। उसी की इस मन्त्र की चर्चा है।

2. मन्त्र का दूसरा विषय- ऋषि- 'विधृति' है। यजु० 11/66 में महर्षि इसका अर्थ करते हैं- विविधं धारणं यस्य सः (आश्चर्य की बात है कि इस 11/66 मन्त्र में 'विधृतिमग्निम्' करके पुनः ये दोनों पद अगल-बगल मिलते हैं!)। यहाँ 'विविध' प्रकार के ज्ञानों को धारण करने वाला- अर्थ है।

3. वृहती छन्द के 'प्रकाशवाहक' और 'महत्ता दर्शाने वाला' अर्थ देखे थे, दोनों अर्थ यहाँ सही हैं- इस मन्त्र में प्रकाशवाहक, अग्नि-सदृश, ज्ञान से ज्वलन्त आत्मा का वर्णन है, और उसकी महान सिद्धि दर्शाई गई है।

4. मध्यम स्वर से सम्भवतः ज्योति के बीच की स्थिति का ग्रहण हो। तथापि यहाँ कुछ संशय है, क्योंकि जिस दशा का यहाँ वर्णन है वह तो मनुष्य की सर्वोच्च दशा है।

पङ्क्ति छन्द का उदाहरण

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः।
त्वं साहस्रस्य राय ईशेषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा।।
यजु० 17/71।।

ऋषि- कुत्सः। देवता- अग्निः।

छन्द/स्वर- भुरिगार्षी पङ्क्तिः / पञ्चमः।

मन्त्र का तात्पर्य- साधना में योगी का सम्बोधन करते हुए अन्य सेवाभावी जन कहते हैं- हे ज्ञानाग्निस्वरूप। हे असंख्य आँखों वाले! हे असंख्य सिरों वाले! तेरे असंख्य प्राण (जीव के साधन) और व्यान (चेष्टा के निमित्त) हैं; तुम अपरिमित धन के ईश्वर हो; इसलिए तुम विज्ञानी के लिए हमारी सेवाएँ अर्पित हैं। स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ यह किया है कि योगजनित सिद्धि से योगी अनेकों प्राणियों के शरीर में प्रवेश कर सकता है और विपुल धन प्राप्त कर सकता है।

विशेष-

1. मन्त्र का मुख्य विषय- देवता- 'अग्नि' है, जो कि पूर्ववत् ज्ञान की पराकाष्ठा को पहुँचे मनुष्य के लिए है।

2. मन्त्र का दूसरा विषय- ऋषि- 'कुत्स' है। यह शब्द निघण्टु (2/20) में वज्रार्थक पढ़ा गया है, और निरुक्त (3/11) में यास्क इसका निरूपण इस प्रकार करते हैं- **वज्रः कस्मात्? वर्जयतीति सतः। तत्र कुत्स इत्येतत् कृन्ततेः। ऋषिः कुत्सो भवति, कर्ता स्तोमानामित्यौपमन्यवः। अत्राप्यस्य वधकर्मैव भवति।**- अर्थात् वज्र इसलिए कि वह निवारण करता है। 'कुत्स'

कृती छेदने से काटने के अर्थ में है। ऋषि को कुत्स कहते हैं, जो कि वेद के ज्ञाता होते हैं। क्योंकि वे अज्ञान का वध करते हैं, इसलिए भी वज्र शब्द उनके लिए सही है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से इस मन्त्र में उस आत्मा का वर्णन है, जिसने अपने सारे अज्ञान का उस प्रकार नाश कर दिया है, जैसे कि वज्र से शत्रु का किया जाता है।

3. पङ्क्ति छन्द के मुख्य अर्थ 'पाँच की अभिव्यक्ति' लें, तो यहाँ पाँच सिद्धियाँ दर्शाई गई हैं- सहस्राक्षः, शतमूर्धा, शतप्राणः सहस्रव्यानः और सहस्रायः। योगी की शक्तियों, उसकी प्राण वायुओं और व्यवहारों की भी यहाँ चर्चा है, जो कि पङ्क्ति के ऊपर अर्थ थे।

4. पञ्चम् स्वर से अतीन्द्रिय रहस्य को व्यक्त करने वाला अर्थ तो यहाँ सौ प्रतिशत सही बैठता है।

जगती छन्द का उदाहरण

ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु सदृक्षासः प्रतिदृक्षस एतन।
मितासश्च सम्मितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन्।।
यजु० 17/84।।

ऋषि- सप्तऋषयः। देवता- मरुतः।

छन्द/स्वर- निचृदार्षी जगती / निषादः।

मन्त्र का तात्पर्य- यह मन्त्र उष्णिक् छन्द के उदाहरण (यजु० 17/83) के अनन्तर आता है, और उससे सम्बद्ध है।

जिन विद्वानों ने उस मन्त्र की शिक्षा को जीवन में उतार लिया हो, उनको यहाँ 'मरुत्' शब्द से सम्बोधि किया जा रहा है। हे मरुतों! जो तुम ऊपर कहे हुए लक्षणों से युक्त हो, अन्य जो इस लक्षण वाले हैं उनके समान हो, पक्षपात-रहित हो, सत्यज्ञानियों के सदृश हो, वो आप हमें अच्छी प्रकार प्राप्त हों। इस जगत् ('यज्ञ' का 'जगत् भी एक अर्थ है) में या हमारे इन व्यवहारों में, आप आज सम्यक् ज्ञान वाले, सत्य के विवेचक हमें भी अपने समान उस ज्ञान से भर दें।

विशेष-

1. मन्त्र का मुख्य विषय- 'मरुत-जन'- जहाँ एक ओर समाधारण मनुष्यों के लिए जीवन जीने के लिए सत्संग का उपदेश है, वहीं यहाँ विशेष रूप से धर्मात्मा विद्वानों के लिए है। पद मन्त्र में भी प्राप्त है।

2. मन्त्र का दूसरा विषय- ऋषि- 'सप्तऋषि' है। आश्चर्यतया, हम यहाँ भी केवल सात गुणों का उपदेश पाते हैं- ईदृक्षासः, एतादृक्षासः, सदृक्षासः, प्रतिदृक्षासः, मितासः, सम्मितासः, सभरसः।

3. जगती छन्द से जगत् के उपकार का विषय होना चाहिए। सो, यहाँ हम पाते हैं कि विद्वानों से साधारण जन विनती कर रहे हैं कि वे अपना ज्ञान उनमें भी बाँटें, जिससे कि उनका सांसारिक व्यवहार भी यज्ञरूप हो जाए।

4. निषाद स्वर का एक अर्थ हमने देखा था- 'पूरी तरह स्थापित करने वाला' या 'जनाने वाला'। दोनों ही अर्थ यहाँ मरुतों के लिए सही बैठते हैं।

मैंने उपर्युक्त मन्त्र बिना परखे उठाए थे। फिर भी हम देख सकते हैं कि मन्त्रों अवयवों के अर्थ जो हमने पिछले दो माहों के लेखों में जाने, वे अधिकतर सम्यक् हैं। षड्ज और मध्यम स्वरों के अर्थ कुछ असम्यक् लगे। सो, अन्य विद्वान् भी इस विषय में अपने विचार अवश्य प्रस्तुत करें। इस विश्लेषण से यह भी सिद्ध हुआ कि इन अवयवों को समझने से मन्त्र में किस बात पर जोर दिया जा रहा है, या किस प्रकार उपदेश को समझना चाहिए, इसको जानने में हमें सहायता मिलती है। अब यदि आप वेद में जो मन्त्र एक से अधिक स्थलों पर आए हैं, उनका पुनरावलोकन करेंगे, तो आप पायेंगे कि उन समान मन्त्रों के इन अवयवों में भेद होगा। वह भेद ही हमें उस प्रसंग में मन्त्र के सही अर्थ करने में प्रवृत्त करेगा। इसलिए बिना इन अवयवों को ध्यान में रखे, वेद-मन्त्रों का सही अर्थ करना असम्भव नहीं, तो कठिन तो अवश्य है!

❑❑

इतिहास के पन्नों में अमर हुतात्मा-स्वामी श्रद्धानन्द

(पं. महेन्द्रपाल आर्य, 26A मीठा पानी अग्रनगर, प्रेमनगर-III, नांगलोई, दिल्ली-११००४१)

स्वामी श्रद्धानन्द का नाम सुनते ही आर्य जनों के सामने, साहस की, सत्यता की, श्रद्धा की कर्मठता की व ईश्वर भक्त की एक तस्वीर मानो सामने उपस्थित हो जाती है, वह चित्र भी उन्हीं का, जिनको न मृत्यु का भय था और न ही संसार की किसी अन्य शक्ति का, जीवन उनका तो सत्य के व मानवता के पुजारी के रूप में निखरा, कर्मठता के भी वह प्रतीक थे, अपना जीवन भी प्रभु के आगे उन्होंने समर्पित कर दिया था, जैसे नदी के प्रवाह में बहने वाला तिनका भी पूर्ण समर्पित हो जाता है।

स्वामी श्रद्धानन्द में विपत्तियों से लड़ने का अदम्य साहस था और संगठन की अद्भुत क्षमता थी, कार्य करने में उत्साह तथा हृदय में अगाध ईश्वर भक्ति थी और देश व धर्म के लिए अनन्य प्रेम था, धर्म प्रचार की सच्ची लगन व हृदय की विशालता के साथ लक्ष्य भी महान था।

मेरे विचार से अपने गुरु ऋषि दयानन्द के कुछ गुणों को छोड़ स्वामी श्रद्धानन्द ने प्रायः अपने गुरु के नक्शेकदम को आत्मसात कर लिया था, स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्य समाज तथा सत्य सनातन वैदिक धर्म के रक्षार्थ अपने को उसी प्रकार न्यौछावर किया, जिस प्रकार ऋषि दयानन्द ने किया।

स्वामी श्रद्धानन्द जिज्ञासु थे। सत्य के पुजारी थे और जिज्ञासु ही सत्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं और अपने प्रयास से सत्य को प्राप्त कर ही लेते हैं। गुरु दयानन्द व शिष्य श्रद्धानन्द दोनों की जीवनशैली में काफी कुछ मेल भी है, दोनों ने ही मात्र सत्य को पाना व उसके प्रचार-प्रसार में अपना सर्वस्व मिटा देना ही लक्ष्य रखा।

गुरु दयानन्द ने सच्चे शिव को पाने के लिए माता, पिता के लाड़ व प्यार को त्याग दिया, मन्दिर में शिव के नाम पर लोगों को चढ़ावा चढ़ाते देखा, फिर चूहा का नाचना और कूदना भी देखा, उस मानव के बनाये शिव से मोह तोड़ लिया फिर कल्याणकारी शिव को पाकर ही रहे।

मुन्शीराम भी इसी प्रकार अपने पिता के साथ काशी प्रवास के दिनों में विश्वनाथ मन्दिर में ईश्वर दर्शन को गए, मन्दिर में घुसने की अनुमति नहीं मिली, कारण का पता चला, रीवां रिसायत की रानी अभी दर्शन कर रही हैं, अतः अन्य के दर्शन पर रोक लगी, मुन्शीराम का जिज्ञासु मन बेचैन हो उठा और प्रश्नों को मन ही मन उछालते रहे, क्या यह मूर्ति सच में विश्वनाथ की है, क्या यह देवता कहला सकते हैं? जिनके अंदर इतना पक्षपात हो? फिर इसी जिज्ञासु वृत्ति ने मुन्शीराम को ईसाई बनने को प्रेरित किया, जब गिरजा में गए तो वहां कुछ और ही नजारा धर्मोपदेश देने वाले पोप की पोपलीला को देखा अर्थात् एक पादरी को नन के साथ आपत्तिजनक दृश्य में देखा, तो मुन्शीराम ईसाई बनते-बनते बचे, यह सब कुछ मुन्शीराम की जिज्ञासुवृत्ति का ही परिचायक है।

इसी कारण एक दिन सच्चे ईश्वरभक्त बनकर मुन्शीराम से महात्मा मुन्शीराम, फिर स्वामी श्रद्धानन्द बन गए थे, जिस प्रकार गुरु मूलशंकर से ऋषि दयानन्द बने थे, गुरु तथा शिष्य दोनों के बलिदान को देखें, तो उसमें भी काफी कुछ समानता हम पाते हैं जैसा गुरु ने सत्य के प्रचार-प्रसार में कभी किसी से समझौता नहीं किया और जैसा उपदेश आर्यजनों को दिया, स्वयं उसी पर अमल करते हुये बलिदान को स्वीकार किया तथा सत्य की ही विजय पताका को फहराकर आर्य जनों से चिर विदायी ली, ऋषि ने जो उपदेश आर्यों को स्वमंतव्यामन्तव्य प्रकाश में दिया, आचरण भी स्वयं किया, जैसा–अन्यायकारी, राजा बलवान से न डरे, चाहे वह सनाथ चक्रवती राजा, महाबलवान, गुणवान भी हों उससे न डरें और धर्मात्मा चाहे निर्धन, निर्बल, अनाथ, गुण रहित भी क्यों न हो, उससे डरें, अपने जीवन में उतारा जब नरेश को देखा पतिता के साथ समय बिताते हुये फौरन बोल उठे राजन आप एक शेर हैं फिर इनसे आपका क्या वास्ता? फिर आगे जो हुआ आर्य लोग जानते ही हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द ने भी गुरु के जीवन से अक्षरशः यही शिक्षा ली, अंग्रेजी राज्य का भी बोलबाला था महाबलवान सिद्ध हो रहे थे, किन्तु भारतीयों के लिए महाकाल सिद्ध हो गये, उन बलवानों की पलटनों के सामने अन्याय का विरोध भी स्वामी श्रद्धानन्द जैसे–निडर, निर्भीक, सत्य प्रतिष्ठा करने वाले को छोड़ अंग्रेजों को इतनी बड़ी चुनौती कौन दे सकता था? फिर गुरु का

बलिदान सत्य के खातिर विषपान कर ही हुआ।

इधर शिष्य श्रद्धानन्द ने भी सत्य सनातन वैदिक धर्म की रक्षार्थ एक मतान्ध अन्दर रशीद की गोली के द्वारा, दोनों का बलिदान धर्म की खातिर हुआ, गुरु और शिष्य दोनों ने ही दुनिया वालों को प्राण गंवाते हुये कहा धर्म मानवमात्र का एक है, उस धर्म से कभी विचलित नहीं होना चाहिये, भले ही प्राण गंवाना पड़े, आज आर्य समाज का बैनर लगाकर सर्वधर्म चेतना रैली निकाली जा रही है कितनी लज्जा की बात है।

आर्य समाजी अगर चाहें स्वामी श्रद्धानन्द जैसे ऋषिभक्त का, धर्म जिज्ञासु का, सत्यन्वेषी का, सच्चे समाज सेवक का तथा कल्याण मार्ग के पथिक का, पवित्र जीवन का स्मरणकर अपने जीवन को पवित्र कर ही सकते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द ही आर्य जगत के संन्यासी थे जिन्होंने इतिहास रचा है दिल्ली के जामा मस्जिद मैं वेद मन्त्रों का गुंजायमान किया, जो न भूतो, न भविष्यति, यहां मैं और भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि उस समय के मुसलमान स्वामी श्रद्धानन्द की जामा मस्जिद में तकरीर के लिए ले गये, तो फिर मुसलमान की गोली का शिकार स्वामी जी को क्यों और कैसे होना पड़ा? क्योंकि इससे बात स्पष्ट हो गई कि स्वामी श्रद्धानन्द को मुसलमान भी नेता मानने लगे।

दरअसल बात यह थी कि १६१८ की घटना ने स्वामी जी को दिल्ली का सर्वमान्य नेता बना दिया था, जो स्वामी जी ने रालेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह के लिए जनता को तैयार कर सार्वजनिक सभा बुलाई और प्रायः १८ हजार की भीड़ में स्वामी जी पहली बार राजनैतिक मंच पर बोले, फिर तो उसके बाद भीतर के महानगरों में चमत्कार पूर्ण प्रभावशाली भाषणों से भारतवासियों का मन मोह लिया था।

३० मार्च को एक विशाल जुलूस का नेतृत्व स्वामी जी कर रहे थे, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध, यहां तैनात गोरखा सिपाहियों ने जनता पर गोली चलानी चाही, स्वामी जी सीना खोलकर सेना के आगे खड़े हो गए, १३ अप्रैल को अमृतसर में जलियाँवाला बाग काण्ड में निर्दोष लोगों की हत्या अंग्रेजों ने किया कोई नेता वहां जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाये, स्वामी जी निर्भीकता के साथ पहुंचे, कांग्रेस का अधिवेशन जालन्धर में स्वामी श्रद्धानन्द की ही देन था, उन दिनों में किसी नेता के लिए सोचना भी सम्भव न था, इन सब कार्य ने स्वामी श्रद्धानन्द जी को लोकप्रिय बनाया। इसी लोकप्रियता को ईर्ष्यालु नेता सहन न कर सके।

क्योंकि मोहनदास करमचंद गाँधी चाह रहे थे, हिन्दू-मुस्लिम दोनों सम्प्रदाय ही हमें नेता मानें पर स्वामी श्रद्धानन्द की लोकप्रियता में वह बौना लगने लगे, कारण स्वामी जी ने जामा मस्जिद में तकरीर के समय हम शब्द को रोचक बनाकर लोगों में प्रस्तुत किया और कहा ह-से हिन्दू और म-से मुसलमान, अन्य नेताओं के पास इसका विकल्प नहीं था, अब तुर्की का खिलाफत आन्दोलन भारत लाकर मुसलमानों का हमदर्द बनना चाहा।

इतने में स्वामी श्रद्धानन्द का शुद्धि आन्दोलन तो दिल्ली तथा भारत के सभी प्रान्तों को पार कर पाकिस्तान के कराची तक पहुंच गया, वहां से एक महिला असगरी बेगम, अपने पति सलीम के अत्याचार से दिल्ली आ धमकी और स्वामी श्रद्धानन्द जी के शुद्धि का प्रचार कहां तक सही है, उनके पास पहुंचकर आपबीती सुनाई और इस्लाम मत छोड़, वैदिक धर्म स्वीकारने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने उनको पुत्रीवत् सांत्वना देकर पति तक पहुंचाने का प्रयास किया, किन्तु असगरी ने उस जालिम पति के पास जाने को अस्वीकार किया। अब स्वामी जी उस असगरी बेगम को वैदिक धर्म की दीक्षा देकर शान्ति देवी बनाकर महिला आश्रम में भेज दिया, मात्र तीन महीना में उस महिला के पिता-मौलवी ताज मुहम्मद, अपने दामाद सलीम को साथ लिए दिल्ली आ गये। स्वामी जी ने यथा सत्कार व वस्तुस्थिति की जानकारी दी।

अब यह लोग वापस जाकर स्वामी श्रद्धानन्द, शान्तिदेवी तथा कराची आर्य समाज के मन्त्री तीनों पर मुकदमा दायर कर दिया। 4 दिसम्बर 1926 को मुकदमा का फैसला आया सभी अभियुक्त बरी हो गए।

अब मोहनदास करमचंद गांधी खिलाफत आन्दोलन चलाते हुये मुसलमानों को शुद्धि आन्दोलन के पुरोधा स्वामी श्रद्धानन्द के खिलाफ बरगलाने में सफल हो गए, 23 दिसम्बर को अब्दुल रशीद ने स्वामी जी को गोली मारकर धरती से बराबर के लिए विदा करने में सफल हो गया।

यद्यपि स्वामी जी के सेवक धर्मसिंह ने उस कातिल को पकड़ लिया उस पर मुकदमा चला आदि, पर **मोहनदास करमचंद गाँधी सरीखे लोगों ने उस कातिल को छुडाने की पैरवी की।** आर्य लोगों को चाहिये स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धि आन्दोलन को गति देकर अर्थात् शुद्धि में अपना तन, मन, धन लगाकर स्वामी जी के छूटे कामों को पूरा करना ही उनको सच्ची श्रद्धाञ्जली होगी। आइये! हम सब इसे अंजाम दें।

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०१/२०१६
भार- ४० ग्राम

जनवरी 2016

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

– दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु. प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु. प्रचारार्थ 50 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.	प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/प...
श्री सेवा में.......................
ग्राम.......................
डा0 ....
जिला.......................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।